प्रस्तावना ।

श्रीपरमात्मप्रकाश अध्यात्मकथनी का ग्रन्थ है-निश्चयनयकी अपेक्षा से ही इस ग्रन्थ के आशयको समझने की ज़रूरत है-निश्चय व्यवहार दोनोंही प्रकार की कथनी धर्मात्मा पुरुषों को जानने की आवश्यक्ता है इसही विचार से हमने यह ग्रन्थ छपाया है-लेखकों की असावधानी से श्रीजैनमंदिरों में ग्रन्थ बहुत ही अशुद्ध मिलते हैं इसकारण शुद्ध करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है हमको एक प्राचीन शुद्धलिपि प्राकृत ग्रन्थ की मिलगई जिसके आधारपर हमको इस ग्रन्थ के छापने का साहस हुवा यदि वह प्राचीन पोथी हमको न मिलती तो हम जैनमंदिरों से बीस प्रति इकट्ठी करने परभी शुद्ध नहीं करसक्ते थे-अब भी कहीं कहीं अशुद्धि अवश्य रहगई होंगी जिसकी सूचना विद्वानों के द्वारा मिलनेपर आगामी शुद्धि करादीजावैगी ।

भाषाअनुवाद हमने एक भाषाटीका के आधार पर किया है-यदि कहीं भूल रहगई हो तो अवश्य हमको सूचना मिलनी चाहिये-अनुवाद बहुत संकोच रूप है जिसमें शब्दार्थ और भावार्थ दोनों आगया है आशा है कि हमारी इस अनुवाद की प्रणाली को सब पसन्द करैंगे ।
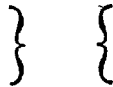
देवबन्द जिला सहारनपुर १२।२।०९	सब भाइयों का दास सूरजभानु वकील

॥श्रीवीतरागायनमः ॥

श्रीयोगेंद्रदेव विरचित ।

परमात्मप्रकाश

प्राकृत दोहा ॥

जे जाया झानाग्गिए, कम्म कलंक डहेवि ।
णिच्च णिरंजण णाणमय, ते परमप्प णवेवि ॥१॥

जो ध्यानरूपी अग्नि से कर्मकलंक को जलाकर नित्य, निरंजन (कर्म मलसे रहित) ज्ञानस्वरूप हुवेहैं ऐसे सिद्ध परमात्मा को नमस्कार होवै ॥

ते वंदउ सिरि सिद्धगण, होसहि जेवि अणंत ।
सिवमई णिरुवम णाणमई, परम समाहि भजंत ॥ २ ॥

जो अनन्तजीव आगामी काल में रागादि विकल्प रहित परम समाधिको पाकर शिवमई, निरूपम और ज्ञानमई सिद्ध होवेंगे उन को नमस्कार करता हूं ॥

तेहउ वंदउ सिद्धगण, अत्यहिं जे विह वंति ।
परम समाहि महिग्गयए, कम्मंधणइ हुणंति ॥ ३ ॥

कर्मरूप ईंधन को जलाकर जो श्रीसिद्धभगवान् इस समय विदेहक्षेत्र में विराजमान् हैं उनको मैं भक्ति सहित नमस्कारकरताहूं॥

तेपण वंदउ सिद्धगण, जे णिव्वाणि वसंति ।
णाणे तिहु यणि गरुयापि, भवसायर न पडंति ॥ ४ ॥

उन सिद्धों को भी नमस्कार करताहूं जो निर्वाण भूमिमें अर्थात मोक्षस्थान में बसते हैं, तीर्थंकर अवस्था में जीवों को ज्ञान देनेके कारण हमारे तीनों भवके गुरु हैं परन्तु वे संसारमें नहीं पड़तेहैं ॥

तेपुणु वंदउं सिद्धगण, जे अप्पाणि वसंति ।
लोया लोउ विसय लुइहु, अच्छहिं विमलु णियंति ॥ ५ ॥

उन सिद्धों को नमस्कार करताहूं जो अपने आत्मस्वरूप में ही बसते हैं और लोक अलोक के समस्त पदार्थों को निर्मल प्रत्यक्ष ज्ञान से देखते हैं ॥

केवल दंसण णाण मँयं, केवल सुक्ख सुहाव ।
जिणवर वंदउं भत्तियए, जेहिं पयासिय भाव ॥ ६ ॥

श्रीजिनेंद्र देव को भक्तिभाव से नमस्कार करताहूं,केवल दर्शन, केवल ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीरज से मंडित हैं और जिन्होंने जीव अजीव आदिक पदार्थों के स्वरूप को प्रकाश कियाहै॥

जे परमप्प णियंति मुणि, परम समाहि धरेवि ।
परमाणंदह कारणेण, तिएणवि तेवि णवेवि ॥ ७ ॥

जिन मुनि महाराजोंने परमानन्द के देनेवाली परम समाधि को लगाकर परम पद प्राप्त किया है उन तीनों को मेरा नमस्कार हो- अर्थात् आचार्य, उपाध्याय और साधु को ॥

भावं पणविवि पंच गुरु,सिरि जोइंदु जि णाव ।
भट्ट पहायरि विएणविउ, विमलुकरे विणुभाव ॥ ८ ॥

अपने मनको निर्मल करके और पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करके श्रीजोगेंद्राचार्य से प्रभाकर भट्ट विनती करताहै ॥

गउ संसार वसंतिहं, सामिय कालु अनंतु ।
परमइ किंपिण पत्त सुहु, दुक्खुजिपत्तु महंतु ॥ ९ ॥

हेस्वामी! इस संसार में भ्रमतेहुवे मुझको अनन्तकाल वीते परन्तु मैंने सुखकुछभी न पाया महान् दुःखही उठाया ॥

चउगइ दुक्खहिं तत्त यह, जो परमप्पउ कोइ ।
चउगइ दुक्ख विनास यरु, कहहु पसायं सोइ ॥ १० ॥

जो चारगतिकेदुःखोंमें तप्तायमान होरहाहै और चारगतिकेदुःखों को विनाश कर परमपद प्राप्त करताहै हे स्वामी उसका वर्णन करो

पुणपुणु पणविवि पंचगुरू, भावें चित्ति धरेवि ।
भट्टपहायर निसुणि तुहुं, अप्पातिविहु कहेवि ॥ ११ ॥

(आचार्य कहतेहैं) हे प्रभाकर! तू निश्चयके साथ सुन मैं भक्ति का भाव मनमें रखकर पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करके तीनप्रकार की आत्माका वर्णन करता हूं ॥

अप्पा तिविहु मुणेव लहु, मूढउ मेल्लहि भाउ ।
मुणि संणाणे णाणमउ, जो परमप्प सहाउ ॥ १२ ॥

आत्माको तीन प्रकार जानकर प्रथम बहिरात्मभावको छोड़

और अंतरात्मा होकर केवल ज्ञानपूर्ण परमात्मा का ध्यान कर ॥

मूढ़ वियक्खणु बंभुपरु, अप्पा तिविहु हवेइ ।
देहु जिअप्पा जो मुणई, सो जणु मूढ हवेइ ॥१३॥

बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा तीन प्रकारकी आत्मा है जो अपने शरीर को ही आपा मानता है वह मूर्ख अर्थात् बहिरात्मा है ॥

देहहं भिण्णउ णाणमउ, जो परमप्पु णिएइ ।
परम समाहि परिट्ठियउ, पंडिय सो जिहवेइ ॥ १४ ॥

जो आत्मा को देहसे भिन्न शुद्ध ज्ञानस्वरूप परमसमाधि में स्थित जानता है वह अन्तर आत्मा है ॥

अप्पा लद्धउ णाणमउ, कम्मावि मुके जेण ।
मिल्लिवि सयलुवि दव्वु तुहुं, सो परु मुणहि मणेण॥१५॥

जो अपने आपे को प्राप्तहुवाहै ज्ञानमई है कर्मोंसे रहितहै उसको तू अपने मनको तीनप्रकार की शल्यसे शुद्धकरके परमात्माजान॥

तिहुयण वंदिउ सिद्धिगउ, हरिहर झायहिं जोजि ।
लक्खु अलक्खे धरिवि थिरु, मुणि परमप्पउ सोजि ॥ १६ ॥

तीनलोक जिसकी वंदना करताहै हरिहर आदिक जिसका ध्यान करते हैं वह सिद्ध भगवान् परमात्माहै ॥

णिच्च णिरंजण णाण मउ, परमाणंद सहाउ ।
जो एहउ सो संतु सिउ, तासु मुणिज्जहि भाव ॥ १७ ॥

नित्यहै, निरंजन है अर्थात् रागादिक मलसे रहितहै, ज्ञानस्वरूप है, परमानन्द स्वरूपहै जो ऐसाहै वहही शांतिहै शिवहै ऐसा जान कर तू अपने स्वरूप को अनुभवकर ॥

जो णियभाउ ण परिहरइ, जो परभाउ ण लेइ ।
जाइण सयलुवि णिच्चुपर, सो सिव संत हवेइ ॥ १८ ॥

जो अपने स्वभाव को नहीं छोड़ताहै और परवस्तुके भावको नहीं ग्रहण करताहै और निजको और परको अर्थात् तीन लोकके त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थों को जानताहै वहही शांति शिव है ॥

जासु ण वण्णु ण गंधु रसु, जासु ण सद्द ण फास ।
जासु ण जम्मणु मरणु ण, विणाउ णिरंजण तासु ॥ १९ ॥
जासु ण कोहु ण मोहमउ, जासु ण माया माण ।

जासु ण ठाणु ण झाणु जिय, सोजि णिरंजण जाण॥ २० ॥

अत्थि ण पुरण ण पाउ जसु, अत्थि ण हरसु विसाउ ।

अत्थि ण एक्कुवि दोसु जसु, सोजि णिरंजण भाउ ॥ २१ ॥

जिसमें वरण, गंध, रस, शब्द, स्पर्शन नहींहै अर्थात् देहधारी नहींहै जिसका जन्म नहीं, मरण नहीं वही निरंजनहै ॥

जिसको क्रोध नहीं मोहनहीं मद नहीं माया नहीं और मान नहीं है जिसमें ध्यान और ध्यानस्थान भी नहीं है उसही को तू निरंजन जान ॥

जिसके पुण्य पाप नहींहै हर्ष विषाद नहीं है जिसमें किसी प्रकार का भी दोष नहींहै ऐसे जीव को निरंजन अनुभव कर ॥

जासु ण धारणु धेउ णवि, जासु ण तंतु ण मंतु ।

जासु ण मंडल मंडलु मुद णवि, सो मुणिदेउ अणंतु ॥ २२ ॥

धारण, ध्येय, जंत्र, मंत्र, मंडल और मुद्रादिक जिस में नहीं हैं वहही देव अनन्तहै ॥

वेयहि सत्थहि इंदियहिं, जो जिय मुणहु ण जाइ ।

णिम्मल झाइहि जो विसउ, सो परमप्प अणाइ ॥ ११ ॥

वह परमात्मा वेद शास्त्र और इन्द्रियों से नहीं जाना जाता है.वह निर्मल ध्यानसे ही जाना जासक्ता है ॥

केवल दंसण णाणमणउ, केवल सुक्ख सहाउ ।

केवल वीरिउ सो मुणहि, जोजि परावरु भाउ ॥ २४ ॥

केवल दर्शन केवल ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीरज रूप ही को तू परमात्मा जान ॥

एयहिं जुत्तउ लक्खणहि, जोपर णिक्कल देव ।

सो तहिं णिवसइ परमपइ, जो तिल्लोयहिं झेउ ॥२५॥

जो इस प्रकार के लक्षणों वालाहै और तीनलोक जिसकी वंदना करताहै जो सर्वोत्कृष्ट है, शरीररहितहै, वहपरमात्मा लोकके अन्त पर तिष्ठै है ॥

जेहउ णिम्मलु णाणमउ, सिद्धिहिं णिवसइ देउ ।

तेहउ णिवसइ बंभुपरु, देहहं मं करि भेउ ॥ २६ ॥

जैसा निर्मल और ज्ञानमई परमात्मा सिद्ध अवस्था में है वह

ही परमब्रह्म संसार अवस्था में शरीर में रहता है—अर्थात् यह देह-धारी संसारी जीवही सिद्ध पदको प्राप्त होता है॥

जें दिट्ठें तुट्टंति लहु, कम्मइं पुव्व कियाइं।
सो परु जाणहि जोइया, देहि वसंतु ण काइं॥ २७॥

जिस परमात्मा के ध्यानसे पूर्व उपार्जित कर्म नाश होते हैं वह परम उत्कृष्ट जानने योग्य तेरी देहही में बसताहै अन्यकहींनहींहै

जित्थु ण इंदिय सुह दुहइं, जित्थु णमण वा वारु।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुं, अण्णु परे अवहारु॥ २८॥

जिसको इन्द्रियों का सुख दुःख नहीं है और जिसमें मनका व्यापार अर्थात् संकल्प विकल्प नहींहै उसही को तू आत्मा जान अन्य जो कुछ है वह पर है उसको तू छोड़दे॥

देहा देहहं जो वसइ, भेया भेय णएण।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुं, किं अण्णं वहुएण॥ २९॥

देह के साथ एकमेक होकर जो देह में बसताहै और नय कथन से भेदाभेद रूप है अर्थात् देहसे जुदा है, हे जीव तू उसको आत्मा जान अन्य जो अनेक पदार्थहैं उनसे क्या प्रयोजनहै॥

जीवाजीव म एक्कु करि, लक्खण भेए भेउ।
जो परु सो परु भावि मुणि, अप्पा अप्पु अभेउ॥ ३०॥

जीव और अजीव को तू एक मतकर यह दोनों अपने अपने लक्षण से जुदे जुदे हैं जो परहैं उनको पर जान और आत्माको आत्मा जान॥

अमणु अणिंदिउ णाणमउ, मुत्ति रहिउ चिम्मत्तु।
अप्पा इंदिय विसउ णवि, लक्खणु एहु णिरुत्तु॥ ३१॥

मन रहित है इन्द्रियरहित है ज्ञानमई है मूर्तिरहित है चेतन मात्र है इन्द्रियों से नहीं जाना जासक्ता है निश्चय से आत्मा के यह लक्षण हैं॥

भवतणु भोय विरत्त मणु, जो अप्पा झाएइ।
तासु गुरुकी वेल्लडी, संसारिणि तुट्टेइ॥ ३२॥

संसार शरीर भोगमें जो मन लगा हुवा था उस मन को जो आत्मीक ध्यान में लगाता है उसकी संसार के बढ़ाने वाली बेल टूट जातीहै अर्थात् संसार परिभ्रमण बंद होजाता है॥

देहा देउलि जो वसइ, देव अणाइ अणंतु ।
केवल णाण फुरंत तणु, सो परमप्पु भणंतु ॥ ३३ ॥

संसारी जीवके शरीर रूपी चैत्यालय में जो बसता है वहही देवहै अनादि अनन्त है उसहीको केवल ज्ञानकी शक्तिहै उसहीको परमात्मा कहतेहैं ॥

देहि वसंतुवि णवि छिवई, णियमे देहुवि जोजि ।
देहें छिप्पइ जोजि णवि, मुणि परमप्पउ सोजि ॥ ३४ ॥

जो देहमें रहते हुवाभी देह को नहीं छूताहै अर्थात् देह रूप नहीं होजाताहै और देहभी उस रूप नहीं होजातीहै वहही परमात्माहै ॥

जो समभाव परिट्ठियहं, जो इहिं कोवि फुरेइ ।
परमाणंदु जणंतु फुडु, सो परमप्पु हवेइ ॥ ३५ ॥

समता भाव अवस्थामें अर्थात् सुखदुःख जीवन मरण शत्रु मित्र आदिक को बराबर समझ कर निर्विकल्प समाधिमें स्थिर होकर जिसको परम आनन्द प्राप्त होताहै वहही परमात्माहै ॥

कम्मणि वद्धुवि जोइया, देह वसंतुवि जोजि ।
होइ णसयलु कयावि फुडु, मुणि परमप्पउ सोजि ॥ ३६ ॥

यद्यपि कर्मोंसे बंधाहुवा शरीरमें बसताहै परन्तु कभीभी शरीर रूप नहीं हो जाताहै वहही परमात्माहै उसको तू जान ॥

जो परमत्थें निकलुवि, कम्मवि भिण्णउ जोजि ।
मूढासयलु भणंति फुडु, मुणि परमप्पउ सोजि ॥ ३७ ॥

जो निश्चय नयसे अर्थात् असली स्वभाव की अपेक्षा शरीर रहित और कर्म रहितहै अर्थात् शरीर में रहना और कर्म बंधन में पड़ना जिसका असली स्वभाव नहींहै मूढ़मिथ्या दृष्टिलोग जिसको शरीररूप जानतेहैं अर्थात् देहधारी होना उसका असली स्वभाव समझतेहैं वही परमात्मा है ॥

गयणि अणंतु जि एक्कु उडु, जेहउ भुवणु विहाइ ।
मुक्कहं जसु पए विंविय, सो परमप्पु अणाइ ॥ ३८ ॥

जिसके अनन्तानन्तज्ञान में तीनलोक ऐसा है जैसे अनन्त आकाश में एक नक्षत्र अर्थात् एक तारा वही ही परमात्मा है ॥

जोइय विंदहिं णाणमउ, जो झाइज्झइ झेउ ।

मोक्खं कारगु अणवरउ, सो परमप्पउ देव ॥ ३९ ॥

श्रीमुनि मोक्ष प्राप्त होने के हेतु जिस ज्ञानमई आत्मा का ध्यान करते हैं अर्थात् अपनी आत्मा का ध्यान करते हैं वहही आत्मा परमात्मा है और देवहै ॥

जो जिउ हेउलहेवि विहि, जगु वहुविहउ जणेइ ।
लिंगत्तय परिमंडियउ, सो परमप्पु हवेइ ॥ ४० ॥

जो ज्ञानावरणादिक कर्मोंका निमित्त पाकर अर्थात् कर्मों के वश होकर त्रस स्थावर स्त्री पुरुष आदिक अनेक रूप संसार को उपजावैहै अर्थात् संसार में अनेक पर्य्याय धारण करता है उसही को तू परमात्मा जान ॥

जसु अब्भंतरि जगु वसइ, जग अब्भंतर जोजि ।
जगावि वसंतुवि जगु जिणावि, मुणि परमप्पउ सोजि ॥ ४१ ॥

जिसके केवल ज्ञान में सारा जगत् वसताहै अर्थात् सारा जगत् जिसको प्रतिभासता है और वह जगत्को जानने वाला जगत् में बसैहै परन्तु वह जानने वाला जगत् रूप नहीं होजाता है वह ही परमात्मा है। भावार्थ-जैसे किसी बस्तु को देखकर कहदेते हैं कि वह बस्तु हमारी आंख में है और यह भी कहते हैं कि हमारी आंख उस वस्तुमें है परन्तु आंख अलगहै और देखने योग्य वस्तु अलगहै इसही प्रकार संसारके पदार्थों को देखने वाला जीवहै ॥

देह बसंतुवि हरि हरवि, जे अज्झवि ण मुणंति ।
परम समाहि भवेण विणु, सो परमप्पु भणंति ॥ ४२ ॥

शरीर के अन्दर जो आत्मा बसता है उसको परम समाधि के भावसे रहित हरिहर आदिक नहीं पहचानसक्ते हैं-वह ही परमात्मा है ॥

भावाभावहि संजवउ, भावाभावहिं जोजि ।
देहिजि दिट्ठउ जिणवरहिं, मुणि परमप्पउसोजि ॥ ४३ ॥

जो निजभाव से संयुक्त और परभाव से रहित है उसको पर भाव से रहित और निजभाव से संयुक्त होकर श्रीजिनेंद्र देवने देहमें देखाहै उसको तू परमात्मा जान ॥

देह बसंते जेण पर, इंदिय गाउ वसेइ ।

उव्वसु होइ गएण फुडु,सो परमप्पु हवेइ ॥ ४४ ॥

जिसके देहमें बसने से इन्द्रियों वाला ग्राम बसताहै और जिसके निकलजानेसे उजड़जाताहै उसको तू परमात्मा जान। भावार्थ-जब तक जीव देहमें रहताहै तबही तक आंख नाक आदिक इन्द्रियां अपना २ काम करती हैं और जब जीव निकलजाता है तब कोई भी इन्द्रिय नहीं रहती है ॥

जो णिय करणहिं पंचहिं वि, पंचवि विसय मुणेइ ।
मुणिउं ण पंचहि पंचहिंवि, सो परमप्पु हवेइ ॥ ४५ ॥

जो पांचों इन्द्रियों के विषय को जानता है और इन्द्रियां इंद्रियों के विषय को नहीं जानती हैं उसही को तू परमात्मा जान। भावार्थ-पांचों इन्द्रियां आंख नाक कान, जिह्वा और त्वचा यह सब जड़ हैं इनमें जानने की शक्ति नहींहै संसारी जीव इन इन्द्रियों के द्वारा इस प्रकार जानता है जैसाकि जिसकी आंख कमजोर होगई है वह ऐनक (चशमे) के द्वारा देखता है परन्तु ऐनकमें देखनेकी शक्ति नहींहै वह देखने जानने वाला जीवहै वहही परमात्मा है॥

जसु परमत्थें बंधु णवि, जोइय णवि संसारु ।
सो परमप्पउ झाणितुंहुं,मुणि मेल्लावि ववहारु ॥ ४६ ॥

जिसका असली स्वभाव कर्मोंके बंधसे और संसारसे अर्थात् अनेकरूप घूमनेसे रहितहै। भावार्थ-कर्मबंध और संसारमें घूमना जिसका असली स्वभाव नहींहै वह परमात्मा है उसका तू ध्यानकर और व्यवहार को त्यागने योग्य समझ ॥

णेया भावें वल्लि जिवि, थक्कइ णाण वलेवि ।
मुक्कहं जसु पए विंवयउ, परम सहाउ भणेवि॥ ४७ ॥

जैसे किसी मकानमें कोई बेल बोईजावै तो वह उगकर और बढ़कर मकानके अन्दर फैलजावैगी परन्तु यदि मकान बड़ा होता तो और भी लंबी फैलती इसही प्रकार केवल ज्ञान सर्व पदार्थोंको जानता है यदि इससे अधिक पदार्थ होते तो उनको भी जानता-मोक्ष पानेपर जिसमें ऐसा ज्ञान है वहही परमात्मा है ॥

कम्मई जासुजणंत णवि,णउ णउ कज्ज सयावि ।
कंपि ण जणियउ हरिउणवि, सोपरमप्पउ भावि ॥ ४८ ॥

कर्म सुख दुःखरूप अपने२ कारज को उत्पन्न करतेहैं परन्तु जीव के स्वभाव को नाश नहीं करसक्ते हैं और जीवमें कोई नवीन स्वभाव उत्पन्न नहीं करसक्ते हैं वह जीव परमात्मा है उस को तू अनुभव कर ॥

कम्मणि बंधवि होइ णवि, जो फुडुकम्म कयावि ।
कम्मवि जोण कयावि फुडु, सो परमप्पउ भावि ॥ ४९ ॥

कर्मोंसे बंधाहुवा भी जो कर्मरूप नहीं होताहै और कर्मभी जिस रूप नहीं होजाते हैं वही परमात्मा है उसको तू अनुभवकर । भावार्थ—कर्म जड़हैं जीव चैतन्यहै—जड़ बदलकर चेतन नहीं होता और चेतन बदलकर जड़ नहीं होसक्ता है—कर्म जीवके स्वरूप से भिन्न ही हैं ॥

किवि भणंति जिउ सव्वगउ, जिउ जडु केवि भणंति ।
केवि भणंति जिउ देहसमु, सुण्णवि केवि भणंति ॥ ५० ॥

कोई जीवको सर्वव्यापी कहते हैं कोई जीवको जड़ बताते हैं कोई जीव को देह परिमाण कहते हैं और कोई जीवको शून्य कहते हैं ॥

अप्पा जोइय सव्वगउ, अप्पा जडुवि वियाणि ।
अप्पा देह समाणु मुणि, अप्पा सुण्णु वियाणि ॥ ५१ ॥

आत्मा सर्वव्यापी भी है जड़ भी है देह परिमाणभी है और शून्यभी है ॥

अप्पा कम्मवि विज्जियउ, केवल णाणे जेण ।
णेयालोउ मुणेइ जिय, सव्वगु वुचइ तेण ॥ ५२ ॥

जीवात्मा कर्मों से रहितहोकर केवल ज्ञान के द्वारा लोक अलोक अर्थात् सर्व को जानता है इस हेतु सर्वगत अर्थात् सर्वव्यापी कहा है ॥

जोणिय वोहि परिट्ठियहं, जीवहं तुट्टइ णाणु ।
इंदिय जणियउ जोइया, तेजिउ जडुवि वियाणु ॥ ५१ ॥

जब जीवको अतिन्द्रिय ज्ञान होता है तब इन्द्रियज्ञान कुछ नहीं रहता है इस कारण उस समय इन्द्रियज्ञान से रहित होताहै इसही हेतु जड़ कहा है। भावार्थ। इन्द्रियां जड़हैं व्यवहार में इन्द्रियोंके ही द्वारा ज्ञान होता है परन्तु आत्मीक परमशक्तिके प्रकट होनेपर

इन्द्रियों से भिन्न अतिन्द्रियज्ञान प्राप्त होने की अवस्थामें इन्द्रियां जड़ रूप रहजाती हैं ॥

कारण विरहिउ सुद्ध जिउ, वड्ढइ खिरइ ण जेण ।
चरम सरीर पमाणु जिउ, जिणवर बोल्लहि तेण ॥ १४ ॥

कर्मरूप कारणके अभाव से सिद्धजीव घटता बढ़ना नहींहै जिस शरीर से मुक्ति होती है उस शरीरके परिमाण रहता है ऐसा श्री-जिनेंद्र देवने कहा है ॥

अट्ठवि कम्मइं वहुविहइं, णव णव दोसावि जेण ।
सुद्धहं एक्कुवि अत्थिणवि, सुण्णुवि वुच्चइ तेण ॥ ५५ ॥

सिद्धजीव में आठ कर्मोंसे वा इनके भेदाभेद में से कोईभीकर्म नहींहै और १८ दोषोंमें से कोई भी दोष नहीं है इस कारण जीवको शून्य भी कहा है ॥

अप्पा जणियउ केण णवि, अप्पें जणिउ ण कोइ ।
दव्व सहावें णिच्चु मुणि, पज्जउ विणसइ होइ ॥ ५६ ॥

आत्मा को न किसीने उपजाया है और न आत्माने किसी द्रव्य को उपजाया है—यह आत्मा द्रव्य सुभाव कर नित्य है परन्तु पर्याय की अपेक्षा उपजता भी है और विनाशभी होता है अर्थात् आत्म द्रव्य तो अनादि नित्य है न पैदा होता है और न विनाश होता है परन्तु पर्याय अर्थात् अवस्था सदा बदलती रहतीहै अर्थात् पर्याय उत्पन्न भी होती है और विनाशभी होती है ॥

तं परियाणहि दव्वु तुहुं, जंगुण पज्जय जुत्तु ।
सहभुय जाणहि ताहि गुण, कमभुय पज्जउवुत्तु ॥ ५७ ॥

द्रव्य उसको जानो जिसमें गुण और पर्यायहों—जो सहभावी हो अर्थात् द्रव्य के साथ सदा रहे अर्थात् द्रव्य का स्वभावहो उस को गुण कहते हैं और जो क्रमवर्ती हो अर्थात् कभी कोई दशाहो कभी कोई उसको पर्याय कहते हैं ॥

अप्पा वुज्झहि दव्व तुहुं, गुण पुणु दंसणु णाणु ।
पज्जय चउगइ भाव तणु, कम्म विणिम्मिउ जाणु ॥ ५८ ॥

आत्मा को द्रव्यजान, दर्शन औरज्ञान उसका गुणजान और चतुरगति परिभ्रमण रूपपरिणमन को कर्मकृत विभावपर्याय जान॥

जीवहि कम्मु अणाइ जिय, जणियउ कम्मण तेण ।

कम्में जीउवि जगिउ णवि, दोहिंवि आइण जेण ॥ ५९ ॥

जीव और कर्म दोनों अनादिहैं न तो जीवने कर्मोंको पैदा किया है और न कर्मों ने जीवको पैदा कियाहै दोनों वस्तु अनादिही से चली आतीहैं आदि कोई नहींहै ॥

इहु ववहारिं जीव भ्रुउ, हे उलहेविणु कम्म ।
वहुविह भावइ परिणवइ, तेणजिधम्म अहम्म ॥ ६० ॥

यह व्यवहारी जीव अपने किये कर्मों के निमित्तसे अनेकभाव रूप परिणमताहै अर्थात् पुण्यरूप और पाप रूप होताहै ॥

तेपुण जीवहि जोइया, अट्ठवि कम्म भणंति ।
जेहिंजि झंपिय जीवणवि, अप्प सहाउ लहंति॥ ६१ ॥

वेकर्म आठ प्रकारकेहैं जिन से ढका जाकर जीव अपने आत्मीक स्वभाव को नहीं पाताहै ॥

विसय कसायहिं रंजियहं, जे अणु आलग्गंति ।
जीव पएसहिं मोहियहं, ते जिण कम्म भणंति ॥ ६२ ॥

विषय कषाय और मोहके कारण जो पुद्गल परमाणु जीवके प्रदेशों से लगतेहैं श्रीजिनेन्द्र भागवान्ने उनहीको कर्म कहाहै ॥

पंचवि इंदिय अण्णु मणु, अण्णवि सयल विभाव ।
जीवहिं कम्मइं जणिय जिय, अण्णवि चउगइ भाव ॥ ६३ ॥

पांच इन्द्रिय, मन, समस्त विभाव परिणाम और चारगति सम्बंधी दुःख यह सब जीवको कर्मों ने उपजायेहैं ॥

दुक्खवि सुक्खवि वहुविहउ, जीवहिं कम्म जणेइ ।
अप्पा देखइ मुणइ पर, णिच्छउ एउ भणेइ ॥ ६४ ॥

जीवोंको सर्व प्रकारके सुखदुःख कर्मोंनेही उपजायेहैं--परन्तु निश्चयनयसे अर्थात् असली स्वभाव से तो जीवात्मा देखने और जानने वालाहीहै ॥

वंधुवि मोक्खवि सयलु जिय, जीवह कम्म जणेइ ।
अप्पा किंपिवि कुणइ णवि, णिच्छउ एउ भणेइ ॥ ६५ ॥

हे जीव बंध और मोक्षको कर्मों नेही उत्पन्न कियाहै निश्चय नयसे जीव बंध और मोक्षका पैदा करनेवाला नहीं है। भावार्थ- यदि कर्म न होते तो बंधऔर मोक्ष यह दो नामही नहोते कर्मोंसे

ही बंध होताहै और कर्मों हीके दूर होनेसे मोक्ष अर्थात् बंधन से छूटना होताहै जीवका असली स्वभाव न बंधन में पड़नाहै और न छूटनाहै बंधना और छूटना यह दोनों बात कर्मों ही के कारण पैदा होती हैं ॥

अप्पा पंगुहु अणुहवइ, अप्पुणु जाइ णएइ ।
भुवणत्तयहं विमज्झि जिय, विहि आणइ विहि णेइ ॥ ६६ ॥

पांगुले मनुष्य की समान जीवात्मा अपने आप न कहीं आता है और न कहीं जाता है—कर्म ही इसजीवको तीनलोक में लिये फिरते हैं ॥

अप्पा अप्पुजि परुजिपरु,अप्पा परुजि ण होइ ।
परुजि कयावि ण अप्पुणवि,णियमें पभणहिंजोइ ॥ ६७ ॥

आत्मा आत्माही है और पर पदार्थ परही हैं—नतो आत्मा अन्यकोईपदार्थ बनसक्ती है और न अन्यकोईपदार्थ आत्मा बनसक्ता है ऐसा जोगीश्वर कहते हैं ॥ -

णवि उपजइ णवि मरइ,बंधु ण मोक्खु करेइ ।
जिउ परमत्थें जोइया, जिणवरु एउभणेइ ॥ ६८ ॥

निश्चय नयसे अर्थात् असली स्वभाव से जीवात्मा न पैदाहोता है और न मरता है न बंधरूप है और न मुक्तिरूप है श्रीजिनेंद्र ऐसा कहते हैं ॥

अत्थिणउप्पजउ जर मरण,रोयवि लिंगवि वण्ण ।
णियमें अप्पु वियाणि तुहुं, जीवह एक्कुवि सण्ण ॥ ६९ ॥
देहहिं उप्जउ जर मरण, देहहिं वण्ण विचित्त ।
देहहिं रोय वियाण तुहुं, देहहिं लिंग विचित्त ॥ ७० ॥

निश्चय नयसे पैदाहोना, जरा अर्थात् बुढ़ापा, मरना, रोग, लिंग अर्थात स्त्रीरूप वा पुरुषरूपहोना, और वर्ण आदिक जीवमें नहीं है यह सब बातें देहही में हैं देहही उत्पन्न होताहै देहही बूढा होता है देहहीका मरण होताहै देहहीमें विचित्ररंगहैं देहही में रोगहै देहही में स्त्री पुरुष आदिक लिंग हैं ॥

देहहिं पिक्खवि जर मरण, मा भउ जीवकरोहि ।
जोअजरामरु बंभुपरु, सो अप्पाण मुणेहि ॥ ७१ ॥
छिज्जउ भिज्जउ जाउखउ, जोइय एहु सरीर ।

अप्पा भावहि निम्मलउ, जें पावहि भवतीर ॥ ७२ ॥

हे जीव तू देहमें बुढ़ापा और मरना देखकर भय मतकर अजर अमर जो परब्रह्म है उसही को तू अपनी आत्माजान-चाहे शरीर का छेदहो भेदहो वा क्षयहो अर्थात् शरीर चाहे कटे टूटे वा नाश होजावै तू उसकी तरफ कुछ ध्यान मत दे तू तो अपनी शुद्धआत्मा का अनुभवकर जिससे तू संसार समुद्र से पार होजावै ॥

कम्मह केरउ भावडउ, अरणु अचेयण दव्व ।
जीव सहावहिं भिरणुजिय, णियमें बुज्झहि सव्व ॥ ७३ ॥

अशुद्ध चेतनारूप कर्मों से उत्पन्न हुवे राग द्वेष आदिक भाव और शरीर आदिक अचेतन द्रव्य यह सब शुद्ध आत्मा से भिन्नहैं यह बात सब जानते हैं ॥

अप्पा मिल्लिवि णाणमउ,अरणु परायउ भाउ ।
ते छंडेविणु जीव तुहुं, भावहिं अप्प सहाउ ॥ ७४ ॥

ज्ञानमई जो आत्मा है उससे जो भिन्नभाव हैं उन सबको छोड़ कर तू अपनी शुद्ध आत्माका अनुभव कर ॥

अट्ठहिं कम्महिं वाहिरउ, सयलहिं दोसहंचत्तु ।
दंसण णाण चरित्तमउ, अप्पा भावि णिरुत्त ॥ ७५ ॥

आठ कर्म और १८ दोषोंसे रहित यह जीव दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूपहै तू ऐसा अनुभव कर ॥

अप्पइं अप्पु मुणउ जिउ, सम्मा दिट्ठि हवेइ ।
सम्मादिट्ठिउ जीवडउ, लहु कम्मइ मुच्चेइ ॥ ७६ ॥

जो जीव आत्मा को आत्मा मानता है वह सम्यक्दृष्टि है सम्यक्दृष्टि ही कर्मों के बन्धन से छूटता है ॥

पज्जय रत्तउ जीवडउ, मित्यादिट्ठि हवेइ ।
बंधइ बहुविह कम्मडा, जिणि संसारु भमेइ ॥ ७७ ॥

जो जीवपर्याय में रागी होकर प्रवर्त्ता है वह मिथ्यादृष्टि है वह ही नानाप्रकारके कर्मों का बंध करके संसार में रुलता फिरता है ॥

कम्मइं दिढ घण चिक्कणइं, गुरुयं मेरु समाइं ।
णाण वियक्खणु जीवडउ, उप्पहिं पाडहिताइं ॥ ७८ ॥

कर्म बहुत ज़ोरावर और चिकने हैं मेरुकी समान बड़े हैं कर्म

ही ज्ञानवान् जीवात्मा को कुमार्ग में डालते हैं ॥

जिउ मित्थते परिणामिउ विवरिउ तच्चु मुणेइ ।

कम्मवि णिमिय भावडा, ते अप्पाणु भणेइ ॥ ७९ ॥

मिथ्यात्वरूप परिणमताहुवा जीव तत्वों को अन्यथारूप जानता है और कर्मों के द्वारा उत्पन्नहुवे भावको ही आपा मानताहै॥

हउं गोरउ हउं सांवलउ, हउंजि विभिण्णउ वण्णु ।

हउं तणु अंगउ थूल हउं, एहउ मूढउ मण्णु ॥ ८० ॥

हउं वरु बंभणु वइसु हउं, हउं खत्तिउ हउं सेसु ।

पुरिसु णउंसउ इत्थिहउं, मुण्णइ मूढ विसेसु ॥ ८१ ॥

तरुणउ बूढउ रूवडउ, सूरउ पंडिउ दिव्वु ।

खवणउ वंदउ सेवडउ, मूढउ मण्णइ सव्वु ॥ ८२ ॥

मैं गोराहूं मैं सांवलाहूं वा नाना प्रकारके वर्णवालाहूं मैं मोटाहूं मैं पतलाहूं इत्यादिक जिनके परिणामहैं उनको मिथ्यादृष्टि जानना॥

मैं ब्राह्मण हूं मैं वैश्यहूं मैं क्षत्रीहूं अथवा शूद्र आदिकहूं मैं पुरुष हूं वास्त्रीहूं वा नपुंसक हूं यह परिणाम मिथ्यादृष्टि के होतेहैं ॥

मैं जवानहूं मैं बूढाहूं मैं रूपवानहूं मैं सूराहूं मैं पण्डितहूं मैं उत्तमहूं मैं दिगम्बरहूं बौधगुरुहूं वा श्वेताम्बर साधूहूं जिनके ऐसे परिणामहैं वह मिथ्यादृष्टिजानने ॥

जणणी जणणुवि कंत घरु, पुत्तुवि मित्तुवि दव्व ।

माया जालुवि अप्पणउ, मूढउ मण्णइ सव्व ॥ ८३ ॥

माता पिता पति स्त्री पुत्र मित्र धनदौलत यह सब माया जालहैं इन सबको मिथ्यादृष्टि जीव अपने मानताहै ॥

दुक्खहि कारणु जे विसय, ते सुह हेउ रमेइ ॥

मिथ्यादिट्ठी जीवडउ, एत्थु न काइं करेइ ॥ ८४ ॥

इन्द्रियों के विषय जो दुःखके कारणहैं मिथ्यादृष्टि उनही को सुखका कारण जानकर उनमें रमताहै तो वह अन्य कौनसा अकारज न करैगा ॥

कालु लहेविणु जोइया, जिम जिम मोह गलेइ ।

तिम तिम दंसण लहइ जिउ, णियमे अप्पुमणेइ ॥ ८५ ॥

काल लब्धिकोपाकर ज्यों ज्यों साधुके मोहका नाशहोता है त्यों

त्यों इस जीवको शुद्धआत्मरूप सम्यक् दर्शनकी प्राप्तिहोतीहै और निश्चयरूप आत्मा का वर्णन करने लगताहै ॥

अप्पा गोरउ किएहुणवि, अप्पा रत्तुणहोइ ।
अप्पा सुहुमुवि थूलणवि, णाणिउ णाणें जोइ ॥ ८६ ॥

आत्मा न गोरा है न कालाहै न सूक्ष्महै न स्थूलहै आत्मा ज्ञानस्वरूप है यहबात ज्ञानीही जानताहै ॥

अप्पा बंभणु वइसु णवि,णवि खत्तिउ णवि सेसु ।
पुरिसु णउंसउ इत्थिणवि, णाणिउ मुणइ असेसु ॥ ८७ ॥

आत्मा न ब्राह्मण है न वैश्यहै न क्षत्रीहै न शूद्रहै न पुरुषहै न स्त्री है न नपुंसक है आत्मा ज्ञानस्वरूपहीहै और ज्ञान से सब कुछ जानताहै ॥

अप्पा वंदउ खवणु णवि, अप्पा गुरउ णहोइ ।
अप्पा लिंगिउ एक्कु णवि,णाणिउ जाणइ जोइ ॥ ८८ ॥

आत्मा यति गुरु सन्यासी उदासी दंडीआदिक भेषधारी भी नहीं है आत्मा ज्ञानस्वरूपहीहै ज्ञानीही आत्मा को पहचानताहै॥

अप्पा गुरु णवि सिस्सु णवि, णवि सामिउ णवि भिच्चु ।
सूरउ कायरु होइ णवि, णवि उत्तम णवि णिच्चु ॥ ८९ ॥

आत्मा न गुरुहै न शिष्य है न राजा है न रंकहै न शूरवीर है न कायर है न उच्च है न नीच है आत्मा ज्ञानस्वरूप है उस को ज्ञानी ही जानता है ॥

अप्पा माणुस देउ णवि, अप्पा तिरिउ ण होइ ।
अप्पा नारउ कहवि णवि, णाणिउ जाणइजोइ॥ ९० ॥

आत्मा न मनुष्य है, न देव है न तिर्यंच है न नारकी है आत्मा ज्ञानस्वरूप है उसको ज्ञानी ही जानता है ॥

अप्पा पंडिउ मुक्खु णवि, णवि ईसरु णवि णीसु ।
तरुणउवूढउ वालु णवि, अण्णुवि कम्म विसेसु ॥९१॥

आत्मा न पण्डितहै न मूर्ख है न विभूतिवान है न दरिद्री है न बूढा है न बालक है न जवान है यह सर्व प्रकारकी अवस्था कर्मों ही से उत्पन्न होती हैं ॥

पुण्णावि पाउवि कालु णहु, धम्माहम्म विकाउ।

एक्कुवि अप्पा होइ णवि, मिल्लिवि चेयण भाउ॥ ९१॥

आत्मा न पुण्य पदार्थ है न पाप पदार्थ है आत्माकाल द्रव्य भी नहीं है आकाश भी नहीं है धर्म वा अधर्म द्रव्य भी नहीं है शरीर आदिक पुद्गल द्रव्य भी नहीं है आत्मा चैतन्यस्वरूप है और अपने चेतनास्वभाव को छोड़कर अन्य नहीं होताहै॥

अप्पा संजम सीलतउ, अप्पा दंसण णाण।

अप्पा सासय सुक्ख पउ, जाणंतउ अप्पाण॥ ९३॥

आत्मा संयम, शील, तप, दर्शन, ज्ञानरूप है और अविनाशी मोक्षस्वरूप है आत्माही आत्माको जानता है॥

अण्णुजि दंसण अत्थिणवि, अण्णुजि अत्थि ण णाण।

अण्णुजि चरणु ण अत्थिजिय, मिल्लवि अप्पा जाण॥ ९४॥

हे जीव! आत्मा से भिन्न अन्य कोई दर्शन, ज्ञान और चरित्र नहीं है रत्नत्रय के समूहको ही आत्मा जान॥

अण्णुजि तित्थ म जाहि जिय, अण्णुजि गुरउ म सेव।

अण्णुजि देव म चित तुहुं अप्पा विमल मुएवि॥ ९५॥

हे जीव शुद्ध आत्मा से भिन्न अन्य कोई तीर्थ मत मान कोई गुरु मत सेव और कोई देव मत जान तू निर्मल आत्मा को ही अनुभव कर॥

अप्पा दंसणु केवलुवि, अण्ण सव्व ववहारु।

एक्कुजि जोइय झाइयइ, जोतियलोकहिं सारु॥ ९६॥

आत्मा एकमात्र (खालिस) सम्यग्दर्शनस्वरूप है तीन लोक में सारभूत पदार्थ जो आत्मा है वहही ध्यावने योग्य है॥ अन्य सब व्यवहार है अर्थात् आत्मध्यानके सिवाय धर्म के अन्यसब साधन व्यवहार रूपहीहैं॥

अप्पा झायहि णिम्मलउ, किं बहुएं अण्णेण।

जो झायंतहिं परमपउ, लब्भइ एक्कु खणेण॥ ९७॥

तू अपनी निर्मल आत्माका ध्यानकर जिसके ध्यानमें एक अन्तर मुहूर्त स्थिर होनेसे मुक्ति प्राप्त होजातीहै अन्य बहुत प्रकार के साधनों से क्याकाम॥

अप्पा णियमणि णिम्मलउ, णिय में वसइ ण जासु ।
सत्थ पुराणइ तवयरण, मुक्खुजि करहिं कितासु । ९८ ॥

जिसके मनमें निर्मल अपना आत्मा नहीं वसताहै उसको शास्त्र पुराण और तपश्चरण मोक्ष नहीं देसक्ते हैं ॥

जोइय अप्पे जाणिएण; जग जाणिय हवेइ ।
अप्पहिं केरइ भावडइ, विंविउ जेण वसेइ ॥ ९९ ॥

हे योगी अर्थात् हे साधु जो आत्मा को जानता है वह सब कुछ जानता है क्योंकि आत्मा के ज्ञान में समस्त जगत् झलकरहा है॥

अप्प सहावि परिट्ठियाहिं, एहउ होइ विसेस ।
दीसइ अप्प सहावि लहु, लोया लोय असेस ॥ १०० ॥

जो जीव आत्मस्वभाव में तिष्ठता है अर्थात् लीनहै उस को शीघ्रही आत्मा दिखाई देजाता है अर्थात् केवल ज्ञान प्रास होजाता है और लोकालोक दिखाई देने लगता है ॥

अप्प पयासइ अप्पु परु, जिम अंवर रवि राउ ।
जोइय एत्थुम भंति करि, एहउ वत्थु सहाउ ॥ १०१ ॥

जैसे आकाश में सूरज आपको और पर पदार्थों को प्रकाश करता है इसही प्रकार आत्माभी अपने आपको और लोकालोक को देखताहै इसमें संशय मतकर यह वस्तुस्वभाव है ॥

तारायणु जलि विंवियउ, णिम्मलि दीसइ जेम ।
अप्पइ णिम्मलि विंवियउ, लोयालोउवि तेम ॥ १०२ ॥

जैसे निर्मल जलमें तारे प्रतिविंवित होतेहैं ऐसेही आत्मा के निर्मल स्वभाव में लोकालोक प्रतिविंवित होते हैं ॥

अप्पुवि परुवि वियाणियइं, जें अप्पें मुणिएण ।
सो णिय अप्पा जाणितुहुं, जोइय णाण वलेण॥ १०३ ॥

जिस आत्मा के जानने से अपने आप को और अन्य सर्व पदार्थों को जान सकते हैं उस ही शुद्ध आत्मा को तू अपने ज्ञान के वल से जान ॥

णाणु पयासहि परम मुहुं, किं अण्णे वहुएण ।
जेण णियप्पा जाणियइ, सामिय एक्क खणेण॥ १०४ ॥

(प्रश्न) हे स्वामी मुझको वह ज्ञान बताओ जिस ज्ञानसे एक क्षणमें शुद्ध आत्माको जान जावें और जिस ज्ञानके सिवाय और कोई वस्तु कार्यकारी नहीं है ॥

अप्पा णाण मुणेहि तुहुं, जो जाणइ अप्पाण ।
जीव पएसहिं तेत्तडउ, णाणेगयणपमाण ॥१०५॥

(उत्तर) आत्मा को तू ज्ञानमईमान वह आत्मा आपही अपने आपको जानता है निश्चय नयसे अर्थात् असलियत में उस आत्मा के प्रदेश लोक के बराबर हैं और व्यवहार में शरीर के बराबर हैं और ज्ञानकी अपेक्षा लोकालोकके बराबर हैं ॥

अप्पहिं जेवि विभिण्ण वढ़, तेजिहवि ण णाण ।
ते तुहुं तिण्णवि परिहरिवि, णियमें अप्पुवियाण ॥ १०६ ॥

आत्मासे भिन्न जो पदार्थ हैं वह ज्ञान नही हैं अर्थात् उनमें ज्ञान नहीं है इस कारण तू सर्व पदार्थों को छोड़कर निश्चयके साथ आत्मा ही को जान ॥

अप्पा णाणहिं गम्मु पर, णाण वियाणइ जेण ।
तिण्णवि मिल्लिवि जाणि तुहुं, अप्पा णाणे तेण ॥ १०७ ॥

आत्माज्ञान में आने योग्य है ज्ञानसेही आत्माजानी जातीहै इस कारण तू और सब बात छोड़कर आत्माको ज्ञानके द्वाराजान ॥

णाणिय णाणिउं णाणएण,णाणिउ जा ण मुणेहि ।
ता अण्णाणें णाणमउ किं, परबंभु लहेहि ॥ १०८ ॥

ज्ञानीजीव जितने काल तक ज्ञानमई आत्माको नहीं जानता है उतने कालतक अज्ञानीहुवा परब्रह्मको नहीं पाता है अर्थात् जब तक रागद्वेष में फंसारहता है तब तक परमब्रह्म अर्थात् परमात्मा को नहीं पाता है ॥

जो इज्जइ तिम बंभुपरु, जाणिज्जइ तम सोइ ।
बंभु मुणेविणु जेणलहु, गम्मिज्जइ परलोइ ॥ १०९ ॥

आत्मा के जानने से परलोक सम्बन्धी परमात्मा जानाजाताहै वहही परमब्रह्म है आत्माही के देखने और जाननेसे वह देखाजाना जाताहै—भावार्थ आत्माही परमब्रह्म परमात्मा है ॥

मुणिवर विंदहिंहरिहरहिं, जो मण णिवसइ देव ।
परहंजि परतरु णाणमउ, सो वुच्चइ परलोउ ॥ ११० ॥

मुनीश्वर और हरिहरादिकके मनमें जो देव बसताहै वह उत्कृष्टहै ज्ञानमई है उसही को परलोक कहतेहैं ॥

सो पर वुच्चइ लोउपर, जसु मइ तित्थव सेइ।
जहिं मइ तहिं गइ जीवहवि, णियमेंजेण हवेइ ॥ १११ ॥

जिसके मनमें वह बसताहै जिसको परलोक कहते हैं अर्थात् शुद्ध आत्मा, भावार्थ-परमात्मा का जिसको ध्यान है वह अवश्य परमात्म पदको प्राप्त होगा—क्यूंकि जैसी मति वैसीही गति॥

जहिं मइ तहिं गइ जीव तुहुं, मरणवि जेण लहेहि।
तें परबंभु मुणवि मइ, मा पर दव्वि करेहि ॥ ११२ ॥

जैसे तेरी बुद्धि है मरकर तैसी ही गतिको तू प्राप्त होगा इस कारण परमब्रह्म से बुद्धि को हटाकर अन्य किसी द्रव्य में अपनी बुद्धि को मत लगा—अर्थात् अन्य सर्व पदार्थों से रागद्वेष को छोड़ कर शुद्ध आत्मा का ध्यानकर ॥

जोणिय दव्वहिं भिण्णु जडु, तें परदव्व वियाणि।
पोग्गल धम्मअहम्म णहु, कालवि पंचमु जाणि ॥ ११३ ॥

जो आत्मा से पर पदार्थ हैं अचेतन हैं उनही को तू परद्रव्य जान, वह पांच हैं पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश और काल॥

जइणावि सद्धावि कुवि करइ, परमप्पइ अणुराउ।
अग्गि कणी जिम कट्ठगिरि, डहइ असेसुविपाउ॥ ११४ ॥

जो कोई सम्यक् दृष्टि एक क्षण अर्थात् बहुत थोड़े काल भी आत्मा में अनुराग करता है लीन होता है वह बहुत कर्मों का नाश करता है जैसे अग्नि का एक कण ईंधन के बहुत बड़े समूह को शीघ्रही भस्म करदेता है ॥

मेल्लिवि सयल अवक्खडी, जिय णिच्चिंतिउ होइ।
चित्तु णिवेसिवि परमपइ, देउ णिरंजण जोइ ॥ ११५ ॥

हे जीव तू समस्त बखेड़ा अर्थात् चिंता को त्यागकर निश्चिंत हो जा और मन को परमात्मस्वरूप में लगाकर निरंजन देव अर्थात् शुद्ध निर्मल आत्मा को देख ॥

जं सिव दंसण परम सुहु, पावहिं झाणु करंतु।
तं सुहु भुवणेवि अत्थिणवि, मेल्लिवि देउ अणंतु॥ ११६ ॥

अनन्त देवोंको छोड़कर ध्यान के द्वारा शिव अर्थात् परम आत्मा को देखने से जो परम आनन्द प्राप्त होता है वह आनन्द तीन लोक में अन्य कहीं भी नहीं है ॥

जं मुणि लहइ अणंतु सुहु, णिय अप्पा झायंतु ।
तं सुहु इंदुवि णवि लहइ, देविहिं कोडि रमंतु ॥ ११७ ॥

अपनी शुद्ध आत्मा के ध्यानसे जो आनन्द साधु को मिलता है वह आनन्द इन्द्रको भी प्राप्त नहींहै जो करोड़ों देवांगनाओं से रमता है ॥

अप्पा दंसण जिणवरहिं, जं सुहु होइ अणंतु ।
तं सुहु लहइ विराउ जिउ, जा णंतउ सिउसंत ॥ ११८ ॥

अपनी निज आत्मा के देखने से जो अनंत सुख श्री जिनेंद्र को होताहै वही सुख वीतरागी पुरुष शिवसंत अर्थात् अपनी शुद्धआत्माके अनुभव से पाताहै ॥

जो इय णियमणि णिम्मलइ, परदीसइ सिवसंत ।
अंवर णिम्मल घण रहिए, भाणुजि जेम फुरंत ॥ ११९ ॥

शुद्ध निर्मल मनमेंही शिव संत अर्थात् शुद्ध आत्मा नज़रआताहै जैसे बादलों से रहित साफ़ आकाश में ही सूरज का प्रकाश प्रकट होताहै ॥

राएं रंगिए हियवडइ, देउ ण दीसइ संतु ।
दप्पणि मइलइ विंबु जिम, एहउजाणि णिभंतु॥ १२० ॥

जिसका मन राग अर्थात् मोह में रंगा हुवाहै उसको संतदेव अर्थात् परमात्मा नजर नहीं आताहै जैसे मैले दर्पण में प्रतिबिम्बनहीं पड़ताहै—हे शिष्य तू ऐसा जान इसमें संदेह नहीं है ॥

जसु हरिणत्थी हियवडइ, तसुणवि वंभुवियारि ।
एक्कहिं केम समंति वढ, वेखंडा परियारि ॥ १२१ ॥

जिसके मनमें स्त्री वसती है उसके मनमें ब्रह्मअर्थात् शुद्धपरमात्मा नहीं वसताहै क्यूंकि एकमयानमें दो तलवार नहीं समासकीहैं

णिय मणि णिम्मलि णाणियह,णिवसइ देउ अणाइ ।
हंसा सरवर लीण जिम, महु एहउ पडिहाइ ॥ १२२ ॥

ज्ञानी जीवके निर्मल मनमें अनादि अनन्त देव निवास करता

है जैसे हंस पक्षी सरोवर में निवास करता है हे शिष्य इमको यहही बात सूझतीहै ॥

देउ ण देवलि णवि सिलइ, णवि लिप्पइ णवि चित्त ।
अखउ णिरंजण णाणमउ, सिउ संठिउ समचित्त ॥ १२३ ॥

देव अर्थात् परमात्मा जो अविनाशी है कर्मों से रहित है और ज्ञानमई है वह देवालय अर्थात् मन्दिर में नहींहै पाषाणकी प्रतिमा में नहीं है पुस्तक में नहीं है और चित्राम में नहींहै वह समभाव रूप मन में बसता है ॥

मणु मिलियउ परमेसरहिं, परमेसरुवि मणस्स ।
बीहिमि समरस हूयहिं, पुज्ज चडावउं कस्स ॥ १२४ ॥

मन परमेश्वर से मिलगया और परमेश्वर मनसे मिलगय अर्थात् दोनों एक होगये अब पूजा किसकी करिये ॥

जेण णिरंजण मणु धरिउ, विसय कसायहिं जंतु ।
मोक्खहिं कारणु एत्तडउ, अण्ण ण तंतु ण मंतु ॥ १२५ ॥

जिसने मन को विषय कषाय से रोककर परम निरंजन अर्थात् शुद्ध आत्मा में लगाया है वह ही मोक्षके मार्गपर है क्यूंकि मंत्र तंत्र आदिक अन्य कोई भी उपाय मोक्षमार्ग नहीं है ॥

सिरिगुरु अक्खहि मोक्ख महुं, मोक्खहि कारण तत्थ ।
मोक्खहिं केरउ अण्णु फल, जिम जाणउं परमत्थ ॥ १२६ ॥

हे गुरु मुझको मोक्ष मोक्ष का मार्ग और मोक्षका फल बताओ जिससे मैं परमार्थको जानूं ॥

जोइया मोक्खुवि मोक्ख फल, पुच्छहु मोक्खहिं हेउ ।
सो जिणभासिउ णिसुणि तुहुं, जेण वियाणहिं भेउ ॥ १२७ ॥

हे शिष्य तू मोक्ष, मोक्ष का फल,और मोक्षका कारण पूछता है सो हम जिन वाणी के अनुसार कहतेहैं तू निश्चल होकर सुन॥

धम्महिं अत्थहिं कामहिं, एयहं सयलहं मोक्खु ।
उत्तमु पभणहिं णाणि जिय, अण्णे जेण ण सोक्खु ॥ १२८ ॥

धर्म, अर्थ और काम इनतीनोंसे ज्ञान के पक्षसे मोक्ष उत्तमहै क्यूंकि इन तीनोंमें ज्ञानका आनन्द नहींहै,भावार्थ-धर्म अर्थ काम और मोक्ष यह चार पुरुषार्थ जगत्में प्रसिद्धहैं परन्तु ज्ञान का परम

आनन्द मोक्षहीमें है इस हेतु इन सब में मोक्षही सबसे उत्तम ॥

जइ जिय उत्तमु होइ णवि, एयहं सयलहं सोइ।
तो किं तिण्णवि परिहरिवि, जि वच्चहिं परलोइ॥ १२९॥

यदि मोक्ष उत्तम नहोता तो धर्म अर्थ और कामको छोड़कर श्रीतीर्थंकर भगवान् परलोक में क्यूं ठहरते ॥

उत्तमु सोक्खु ण देइ जइ, उत्तमु मोक्ख ण होइ।
ता किं इच्छहिं बंधणहिं, बद्धा पसुयावि सोइ॥ १३०॥

यदि मोक्ष में उत्तम सुख नहोता तो मोक्ष उत्तम क्यूं कहाजाता जो मोक्ष अर्थात् छूटना उत्तम नहोता तो पशुजो बंधन में बंधे रहते हैं वह क्यूं छूटना चाहते ॥

अणुजि जगहाजे अहियपरु, गुणगुणु तासु ण होइ।
तो तइलोउवि किं धरइ, णियसिर उप्परि सोइ॥ १३१॥

जो मोक्ष में जगत् से अति विशेष गुण नहोते तो तीन लोक मोक्षको अपने सिरपर क्यूं धरता अर्थात् लोक शिखरपर मोक्ष स्थान इसही हेतु है कि उसमें तीनलोकसे अधिकगुण हैं ॥

उत्तमु सोक्खु ण दइ जइ, उत्तमु मोक्खु ण होइ।
ता किं सयलुवि कालु जिय, सिद्धवि सेवहि सोइ॥ १३२॥

यदि मोक्षमें अति उत्तम सुख नहोता तो सिद्ध भगवान् सदा काल मोक्ष में क्यूं रहते ॥

हरिहर बंभवि जिणवरावि, मुनिवरविंदावि भव्व।
परमणिरंजणि मणु धरिवि, मोक्खु जि जायहिं सव्व॥ १३३॥

हरिहर, ब्रह्मा, जिनेश्वर और सर्व मुनि और भव्य पुरुषों ने परम निरंजन परमात्माको मन में धारण करके मोक्षकाहीसाधन किया है ॥

तिहुवणि जीवहिं अत्थि णवि, सोक्खहिं कारण कोइ।
मुक्खु मुएवि ण एक्कु पर, तेणवि चिंतहिं सोइ॥ १३४॥

सब जीव मोक्ष को इस कारण चाहते हैं कि तीनलोक में सिवाय मोक्ष के और कोई सुखका कारण ही नहीं है ॥

जीवहिं सो पर मोक्खु मुणि, जो परमप्पय लाहु।
कम्म कलंक विमुक्काहं, णाणिय बोल्लहिं साहु॥ १३५॥

कर्म कलंक से रहित होकर परमात्मा स्वरूपकी प्राप्ति को ही ज्ञानी लोग मोक्ष कहतेहैं ऐसा तू जान ॥

दंसण णाण अनन्त सुहु, समउ ण तुट्टइ जासु ।
सो परमासउ मोक्ख फलु, बिज्जउ अत्थिण तासु ॥ १३६ ॥

केवल दर्शन केवल ज्ञान अनन्त सुख अनन्त वीर्य आदिक परम गुण मोक्षके फलहैं और यह फल कभी अलग नहीं होतेहैं अर्थात् नित्य रहतेहैं और इनके सिवाय और कोई फलनहींहै ॥

जीवहिं मोक्खहिं हेउ वरु, दंसण णाण चरित्तु ।
ते पुण तिण्णिवि अप्पु मुणि, णिच्छइ एहउ वुत्तु ॥ १३७ ॥

व्यवहार में सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान सम्यक् चारित्र यहतीन मोक्षके कारणहैं और निश्चय में शुद्ध आत्माही मोक्षका कारणहै ॥

पिच्छइ जाणइ अणुचरइ, अप्पें अप्पउ जोजि ।
दंसण णाण चरित्त जिउ, मोक्खहिं कारण सोजि ॥ १३८ ॥

जीव आपही अपनी आत्मा को देखताहै जानताहै और अनुभवन करताहै इस हेतु एक आत्माही जो दर्शन ज्ञान और चारित्र रूपहै मोक्षका कारणहै ॥

जं बोलइ ववहारु णउ, दंसण णाण चरित्तु ।
तं परिमाणहिं जीव तुहुं, जें परु होहि पवित्त ॥ १३९ ॥

व्यवहार नयका यह कथनहै कि सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र इनतीनों को तू अच्छी तरह जान जिससे तू पवित्र होजावे ॥

दव्वइँ जाणइँ जहँ ठियइँ, तहँ जगि मण्णइ जोजि ।
अप्पहिं केरउ भावडउ, अविचलु दंसणु सोजि ॥ १४० ॥

जिस प्रकार जगत् में द्रव्यस्थिते हैं उनको उसही प्रकार यथावत् जान कर अपनी शुद्ध आत्मा में निश्चल स्थिति होना सम्यक् दर्शनहै ॥

दव्वइँ जाणइ ताइ छह, तिहुयणु भरियउ जेहिं ।
आइ विणासवि विज्जियहिं, णाणिहिं पभाणिय एहिं ॥ १४१ ॥

द्रव्य जो तीन लोक में भरे हुवेहैं वह छै ६ हैंउनका आदि और

अन्त अर्थात् उत्पत्ति और विनाश नहींहै-ज्ञानी पुरुषोंने ऐसा कहा॥

जीव सचेयण दव्वु मुणि, पंच अचेयण अण्ण ।
पोग्गलु धम्माइम्मु णहु, कालिं सहिया भिण्ण ॥ १४२ ॥

एक जीव द्रव्य चेतनहै और पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल यह पांच द्रव्य अचेतनहैं यह सब द्रव्य भिन्न भिन्नहैं ॥

मुत्तिविहीणउ णाणमउ, परमाणंद सहाउ ।
णियमे जोइय अप्पु मुणि, णिच्चु णिरंजण भाउ॥ १४३ ॥

अमूर्तीकहै ज्ञानमईहै परमानन्द सरूपहै आत्मा अर्थात् जीव को तू ऐसा जान वह अविनाशी और निरंजनहै ॥

पुग्गल छव्विहु मुत्तुवद, इयर अमुत्त वियाणि ।
धम्माधम्मुवि गइ ठिएहिं, कारण प भणहिं णाणि ॥ १४४ ॥

पुद्गल छै प्रकारकाहै और मूर्तीकहै-पुद्गल के सिवाय अन्य पांच द्रव्य अमूर्तीकहैं अर्थात् एक पुद्गल ही मूर्तीकहै-औरधर्म द्रव्य चलने को सहकारीहै और अधर्म द्रव्य ठहरने को सहकारी है-ऐसा सर्वज्ञ देवने कहाहै ॥

दव्वइं सयलइं वरिठियइं, णियमें जासु वसंति ।
तं णह दव्व वियाणि तुहुं, जिणवर एउ भणंति ॥ १४५ ॥

जिसके पेट में सब द्रव्य वसतेहैं अर्थात् सर्व पदार्थों को अवकाश अर्थात् ठिकाना देताहै उसको तू आकाश जान श्रीजिनेंद्रदेवने ऐसा कहाहै ॥

काल मुणिज्जहि दव्वु तुहुं, वट्टण लक्खण एउ ।
रयणहिं रासि विभिण्ण जिम, तसु अणुयहिं तिहिं भेउ ॥ १४६ ॥

तू काल द्रव्य उसको जान जिसका वर्तना लक्षणहै अर्थात्सर्व पदार्थों के परिणमनको जो सहकारी कारणहै काल के अणु भिन्न २ हैंजैसे रत्नों के ढेर में रत्न भिन्न२ रहते हैं आपसमें जुड़ते नहींहैं॥

जीउवि पुग्गलु कालु जिय, एमिल्लेविणु दव्व ।
इयर अखंड वियाणि तुहुं, अप्प पएसहिं सव्व ॥ १४७ ॥

जीव पुद्गल और काल इन तीनों के सिवाय जो द्रव्यहैं अर्थात् धर्म अधर्म और आकाश यह तीनों एक एक और अखंडित द्रव्यहैं

भावार्थ–जीव भी बहुत हैं और ईंट पत्थर लोहा लकड़ी आदिक पुद्गल भी बहुत हैं और कालके भी अणु बहुत हैं परन्तु आकाश एकही है और उसके टुकड़े भी नहीं होसक्ते हैं ऐसेही धर्मद्रव्य भी एकही है और अधर्मद्रव्यभी एकही है और इनके टुकड़े भी नहीं होसक्ते हैं ॥

दव्व चयारिवि इयर जिय, गमणागमण विहीण।
जीउवि पुग्गलु परिहारिवि, प भणहिं णाणि पवीण ॥ १४८ ॥

जीव और पुद्गल के सिवाय जो चार द्रव्यहैं अर्थात् धर्म अधर्म आकाश और काल इनचारोंमें हिलना चिलना अर्थात् क्रिया नहीं है ज्ञानवान् पुरुषोंने ऐसा कहाहै ॥

धम्माहम्मुवि एक्कु जिपउ, एजि असंख पएस।
गयणु अणंत पएसु मुणि, बहुविहि पुग्गल देस ॥ १४९ ॥

धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य यह दोनों असंख्यात प्रदेशी हैं और एक एक जीव असंख्यात प्रदेशी है आकाश अनन्त प्रदेशी है पुद्गल बहुत भांतिहै और कालका एक एक अणु एकप्रदेशी है ॥

लोयायासु धरेवि जिय, कहियइं दव्वइं जाइं।
एक्कहिं मिलयइं एत्थ जगि, सगुणहि णिवसहिं ताइं॥ १५० ॥

पांचों द्रव्य लोकाकाश के अन्दर हैं और आकाश द्रव्यलोक के अन्दरभी है और लोकके बाहरभी है–अर्थात् छहों द्रव्य एक ही स्थान में रहते हैं परन्तु कोईभी द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यसे मिल कर दूसरे द्रव्यरूप नहीं होजाताहै सब द्रव्य अपने २ ही गुणों में ठहरे रहते हैं ॥

एयइं दव्वइं देहियहिं, णिय णिय कज्जु जणंति।
चउगइ दुक्ख सहंति जिय, तें संसारु भमंति ॥ १५१ ॥

जीव से पृथक् जो पांच द्रव्य हैं वह अपने २ गुणके अनुसार अपना अपना कारज करते हैं इनहींके उपकार को मानकर जीव चतुर्गति रूप संसार के दुःखों को भोगता हुवा भ्रमतारहताहै ॥

दुक्खहि कारण मुणि वि जिय, दव्वहिं एउ सहाउ।
होइवि मोक्खहिं मग्गिलहु, गमिज्जइ परलोउ ॥ १५२ ॥

हे जीव तू इन पांचोंही द्रव्यों को दुःखका कारण जान और

इनको छोड़कर मोक्षमार्ग को ग्रहणकर जिससे मोक्षकी प्राप्तिहो॥

णियमें कहिया एह मइं, ववहारे ण विदिट्ठि।
एवहिं णाणु चरित्तु सुणि, जें पावहिं परमेट्ठि॥ १५३॥

व्यवहार नयसे मैंने सम्यक् दृष्टिका स्वरूप कहाहै इसही प्रकार सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र का स्वरूप सुन जिस से तू परमेष्ठी को पावै॥

जंजह थक्कहु दव्व जिय, तं तहिं जाणइ जोजि।
अप्पहिं करउ भावडउ, णाणु मुणिज्जहु सोजि॥ १५४॥

जो द्रव्यों को जैसे वहहैं तैसाही जानताहै और आत्माको पहचानता है वह सम्यक् ज्ञानीहै॥

जाणिवि मणिणवि अप्पु परू, जो परभाउ चएइ।
सो णिय सुद्धउ भावडउ, णाणिहिं चाणु हवेइ॥ १५५॥

जो आपको और परको जानकर और मानकर परभाव से बचताहै वहही अपनी शुद्ध आत्मा में स्थिर होताहै जानों कि उसको सम्यक् चारित्र है॥

जो भत्तउ रयणत्तयहं, तसु मुणि लक्खणु एउ।
अप्पा मिल्लिवि गुण णिलउ, अएणु ण हियवइ देउ॥ १५६॥

जो रत्नत्रय अर्थात् सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र की सेवा करताहै उसके लक्षण तू इस प्रकार जान कि अनेकगुण मंडित जो एक शुद्ध आत्माहै उसके सिवाय अन्य किसी पदार्थ का वह ध्यान नहीं करताहै॥

जो रयणत्तउ णिम्मलउ, णाणिय अप्पु भणंति।
ते आराहय सिव पयहिं, णिय अप्पा झायंति॥ १५७॥

जो कोई आत्मा को अभेद रत्नत्रय स्वरूप निर्मल ज्ञानमई कहताहै वह पुरुष शिवपद अर्थात् मोक्षका आराधक होकर अपनी शुद्ध आत्माही को ध्यावै है॥

अप्पा गुणमउ णिम्मलउ, अणुदिणु जे झायंति।
ते परणिय में परम मुणि, लहु णिव्वाणु लहंति॥ १५८॥

जो अपनी गुणमई और निर्मल आत्मा को अनुभव करके ध्यान करतेहैं वे महामुनि अवश्य थोड़े ही काल में मोक्षपद को प्राप्त होतेहैं॥

सयलहिं अत्थिहिं जं गहगु, जीवहिं अग्गिमु होइ।
वत्थुविं सेसुवि वज्जियउ, तं णिय दंसण जोइ ॥ १५९ ॥

विशेष अर्थात् भेदाभेद रूप जानने को छोड़कर जो सर्व वस्तुका सत्तामात्र जानना जीवको सबसे प्रथम होताहै वह दर्शनहै॥

दंसण पुव्व हवेइ फुडु, जं जीवहिं विण्णाण ।
वत्थु विसेसु मुणंतु जिय, तं मुणि अविचलु णाण ॥ १६० ॥

दर्शन पहले होताहै और ज्ञान पीछे होताहै जिससे वस्तु विशेषरूप अर्थात् भेदाभेद रूप जानी जातीहै वह ज्ञानहै॥

दुक्खवि सुक्ख सहंतु जिय, णाणी झाण तलीणु।
कम्महिं णिज्जर हेउ तउ, वुच्चइ संग विहीणु ॥ १६१ ॥

परिग्रहरहित ज्ञानी ध्यानमें तल्लीन होकर सुख और दुःख दोनों को समभाव कर सहताहै अर्थात् सुख में हर्ष और दुःखमें रंज नहीं मानताहै दोनों को बराबर समझताहै इससे उसके कर्मों की निर्जरा होतीहै॥

विण्णावि जेण सहंति मुणि, मणि समभाउ करेइ।
पुण्णहं पावहं तेण जिय, संवर हेउ हवेइ ॥ १६२ ॥

जो मुनि सुख और दुःख दोनों को मन में समभाव करके सहताहै उसको पुण्य और पाप दोनों का संवर होताहै अर्थात् न पुण्य का बंध होताहै और न पापका, भावार्थ–कर्मों का आस्रव उसको नहीं होताहै॥

अत्थइ जित्तिउ कालु मुणि, अप्प सरूवणि लीणु।
संवर णिज्जर जाणि तुहुं, सयल वियप्प विहीणु ॥ १६३ ॥

समस्त विकल्प से रहित होकर जितने कालतक मुनि अपने स्वरूप में तल्लीन रहताहै उतने कालतक उसके संवर और निर्जरा रहतीहै अर्थात् नवीन कर्मोंकी उत्पत्ति नहीं होती और पूर्व कर्मों का नाश होता रहताहै॥

कम्मु पुरक्किउ सोखवइ, अहिणव पेसु ण देइ।
संगु मुणविणु जोसयलु, उवसम भाउ करेइ ॥ १६४ ॥

जो मुनि समस्त परिग्रह को त्यागकर समभाव धारण करता है वह पूर्वकृत कर्मों का नाश करताहै और नवीन कर्मों का पैदा होना बन्द करताहै॥

दंसणु णाणु चरित्तु तसु, जो समभाउ करेइ।
इयरहिं इक्कुवि अत्थि णवि, जिणवर एम भणेइ ॥ १६५ ॥

जो समभाव करताहै उसके दर्शन ज्ञान और चरित्र तीनों हैं और जो इससे अर्थात् समभाव से रहित है उसके इन तीनोंमें से एक भी नहीं होताहै श्रीजिनेंद्र देवने ऐसा कहाहै ॥

जावइ णाणिउ उवसमई, तावइ संजदु होइ।
होइ कसायहिं वसि गयउ, जीव असंजदु होइ ॥ १६६ ॥

जबतक ज्ञानी पुरुष समभावी रहता है तबतक वह संयमी है और जब कषाय के वश होताहै तब असंयमी होताहै ॥

जेण कसाय हवंति मणि, सो जिय मेल्लहि मोह।
मोह कसाय विवज्जियउ, पर पावहि समबोह ॥ १६७ ॥

जिससे मनमें कषाय उत्पन्न होतीहै वह त्यागने योग्य मोहहै मोह और कषायके त्याग से समभाव प्राप्त होताहै ॥

तत्तातत्तु मुणेवि मुणि, जे थक्का समभाव।
ते पर सुहिया इत्थु जगि, जहँरइ अप्प सहावि ॥ १६८ ॥

जो मुणि तत्व अतत्व को जानकर और समभाव धारण करके अपनी शुद्ध आत्मामें लीनहैं. इस जगत् में वहही सुखी हैं ॥

बिण्णिवि दोस हवंति तसु, जो समभाउ करेइ।
बंध जु निहणइ अप्पणउ, अणु जगु गहिलु करेइ ॥ १६९ ॥

(निंदा स्तुतिमें) जो समभाव करताहै वह दो दोषोंका भागी होता है एक तो यह कि वह अपने बंधका अर्थात् कर्मबन्धन का नाश करताहै और संसार की रीति से विपरीत प्रवर्तने के कारण जगत् के जन उसको बावलासमझतेहैं-अर्थात् जगत्के लोग उसकी बाबत उल्टी समझ धारण करतेहैं, भावार्थ-जगत्के लोग बावले होजातेहैं ॥

अण्णु जि दोसु हवेइ तसु, जो समभाव करेइ।
सत्तुवि मिल्लवि अप्पणउ, परिहणि लीन हवेइ ॥ १७० ॥

(निंदा स्तुति) जो समभाव करताहै उसको और भी दो दोष होते हैं वह मिले हुये अपने शत्रुको छोड़ताहै और लीन होकर पराधीन होताहै भावार्थ-कर्मशत्रु को त्यागता है और अपनी

आत्मा में लीनहोताहै अर्थात् अपनी आत्माके आधीनहोजाताहै॥

अरणु जि दोस हवेइ तसु, जो समभाउ करेइ।

वियलु हवेइ पुण इक्कलउ, उप्परि जगह चढेइ ॥ १७१ ॥

(निंदा स्तुति) जो समभाव करता है उसको अन्यभी दो दोष होते हैं वह विकल अर्थात् शरीर से रहित होकर अकेला जगत् के ऊपर चढ़ता है अर्थात् मोक्षको जाता है ॥

जा णिसि सयलहिं देहियहिं, जोग्गि उतहि जग्गेइ।

जहिं पुण जग्गइ सयलु जगु, सा णिसि मणिवि सुवेइ॥ १७२ ॥

रात्रि में जगत्के सर्व जीव सोजाते हैं परन्तु जोगी अर्थात् मुनि महाराज जागते रहते हैं अर्थात् धर्म ध्यान में सावधान रहते हैं और जब सारा जगत् जाग उठताहै अर्थात् जगत् के लोग अपने कार्य व्यवहार में लगते हैं उसको जोगी लोग कहतेहैं कि अंधकार हो रहाहै और जगत् के जीव सो रहे हैं—क्यूंकि जगत् के जीवों का संसार व्यवहार में लगना उनकी अज्ञानता के ही कारण होता है, भावार्थ—मुनि महाराजकी यहभी निंदा स्तुति कीगई है कि वह उल्टी चाल चलते हैं रातको तो जागते हैं और दिन को रात बताते हैं ॥

णाणि मुएप्पिणु भावसम, केत्थु वि जाइ णराउ ।

जेण लहेसइ णाणमउ, तेण जि अप्प सहाउ ॥ १७३ ॥

ज्ञानी पुरुष सम भाव को छोड़कर किसी वस्तु में राग नहीं करता है जिस ज्ञानमई को वह प्राप्त होना चाहताहै वह आत्माकाही स्वभाव है ॥

भणई भणावइ णवि थुणइ, णिंदइ णाणि ण कोइ।

सिद्धि हिं कारण भाव सम, जाणंतउ परसोइ ॥ १७४ ॥

ज्ञानी पुरुष न किसी वस्तु की वार्ता करता है न वार्ता कराताहै न किसीकी स्तुति करता है और न निंदा करता है वह जानता है कि सिद्ध अर्थात् मोक्षका कारण समभावहीहै।

गंथहिं उप्परि परम मुणि, देसुवि करइ ण राउ ।

गंथहिं जेण वियाणियउ, भिण्णउ अप्प सहाउ ॥ १७५ ॥

परम मुनि परिग्रह से न राग करते हैं और न द्वेष करते हैं-वह

जानते हैं कि आत्मा का स्वभाव परिग्रह से भिन्न है ॥

विसयहिँ उप्परि परम मुणि देसुवि करइ ण राउ ।

विसयहिँ जेण वियाणियउ, भिण्णउ अप्प सहाउ ॥ १७६ ॥

परम मुनि विषयों के ऊपर राग द्वेष नहीं करते हैं-वह जानते हैं कि आत्मा का स्वभाव विषयों से भिन्न है ।

देहहिँ उप्परि परम मुणि, देसुवि करइ ण राउ ।

देहहिँ जेण वियाणियउ, भिण्णउ अप्प सहाउ ॥ १७७ ॥

परम मुनि देहसे भी राग द्वेष नहीं करते हैं वह जानतेहैं कि आत्मा का स्वभाव देहसे भिन्न है ॥

वित्ति णिवित्तिहि परम मुणि,देसुवि करइ ण राउ ।

बंधहि हेउ वियाणियउ, एयहिँ जेण सहाउ ॥ १७८ ॥

व्रत अव्रत में भी परममुनि राग द्वेष नहीं करतेहैं वह इनको बंधका हेतु समझतेहैं यहही इनका स्वभावहै अर्थात् व्रतसे पुण्य और अव्रतसे पाप होता है ॥

बंधहि मोक्खहि हेउ णिउ, जो णवि जाणइ कोइ ।

सो पर मोहें करइ जिय, पुण्णवि पाउवि दोइ ॥ १७९ ॥

जो कोई बंध और मोक्ष का हेतु नहीं जानता है वह मिथ्यात्व के उदयसे पुण्य और पापको दो भेदरूपजानता है अर्थात् पुण्यको अच्छा समझता है और पापको बुरा-भावार्थ ज्ञानी पुरुष पुण्य और पापदोनों को त्यागता है ॥

दंसण णाण चरित्तमउ,'जो णवि अप्प मुणेइ ।

सिद्धिहिं कारण भणिवि जिय, सो पर ताईं करेइ ॥ १८० ॥

मोक्षके जोकारण कहे गये हैं अर्थात दर्शन ज्ञान और चारित्र को जो कोई आत्मा का स्वरूप नहीं जानताहै वह इसमेंभेदकरताहै॥

जो णवि मण्णइ जीवसम, पुण्णवि पाववि दोइ ।

सो चिर दुक्ख सहंतु जिय,मोहें हिंडइ लोइ ॥ १८१ ॥

जो कोई पुण्य और पापदोनों को बराबर नहीं मानताहै अर्थात दोनों कोही मोक्षके विपरीत बंध नहीं समझता है वरण पुण्य को अच्छा जानताहै वह मोहके वशहोकर संसारमें रुलताहै और चिरकालतक दुःख भोगता है ॥

वर जिय पावइँ सुंदरइ, णाणिय ताइँ भणंति ।

जीवहिं दुक्खइं जणिवि लहु, सिवगइ जाइ कुणंति ॥ १८२ ॥

ज्ञानी लोग ऐसा कहते हैं कि वह पापभी श्रेष्ठ और सुंदरहै जिसके कारण जीव दुःखको जानकर मोक्ष मार्ग में लगजावे ॥

मं पुणु पुण्णइं भल्लाइं, णाणिय ताइ भणंति ।

जीवहिं रज्जइ देवि लहु, दुक्खइ जाइं जणंति ॥ १८३ ॥

ज्ञानी पुरुष ऐसा कहतेहैं कि वह पुण्यभी भला नहींहै जो जीव को राजा आदिक की विभूति देकर अर्थात् विषय कषाय में लगाकर दुःख उत्पन्न करताहै ॥

वर णिय दंसण अहि मुहउ, मरणुवि जीव लहीस ।

मा णिय दंसण विम्मुहउ, पुण्णावि जीव करीस ॥ १८४ ॥

निःसंदेह मुझको सम्यक् दर्शन श्रेष्ठ है चाहे उसके होने से मरणही प्राप्त होताहो निःसंदेह मुझको दर्शनकी विमुखता अर्थात् मिथ्यात्व पसन्द नहीं है चाहे उस मिथ्यात्व के होते हुवे पुण्यही प्राप्त होताहो ॥

जे णिय दंसण अहि मुहा, सुक्ख अणंतु लहंति ।

ते विणु पुण्णु करंताहि, दुक्खु अणंतु सहंति ॥ १८५ ॥

जो जीव सम्यक् दर्शन के सन्मुखहैं वह निःसंदेह अनन्त सुख पाते हैं अर्थात् मोक्ष में जाते हैं और जो इसके बिनाहैं अर्थात् मिथ्या दृष्टिहैं वह पुण्य करते हुवे भी अनन्त दुःख भोगतेहैं भावार्थ अनन्त दुःख रूप संसार में रुलते हैं ॥

देवहिं सच्छहिं मुणि वरहिं, भत्तिए पुण्ण हवेइ ।

कम्मक्खउ पुणुहोइ णवि, अज्जउ संति भणेइ ॥ १८६ ॥

देव शास्त्र और मुनि की भक्तिसे पुण्य होता है परन्तु कर्मोंका क्षय अर्थात् मोक्ष नहीं होता है संत लोग ऐसा कहते हैं ॥

देवहिं सच्छहिं मुणि वरहिं, जोविद्देसु करेइ ।

णिय में पाउ हवेइ तसु, जिं संसार भमेइ ॥ १८७ ॥

जो कोई देव गुरु शास्त्र से द्वेष करताहै उसको अवश्य पाप होताहै जिससे वह संसार में रुलताहै अर्थात् इनकी भक्ति करने से पुण्य और इनकी निंदा करने से पाप होताहै पाप और पुण्य दोनोंहीसे संसार परिभ्रमण है ॥

पावें णारउ तिरिउ जिउ, पुएणें अमरु वियाणु ।
मिस्सें माणुस गइ लहइ, दोहिवि खइ णिव्वाणु ॥ १८८ ॥

पाप से जीव नरक और तिर्यंच गतिको पाता है और पुण्य से देव गति मिलती है और पाप पुण्य दोनों मिलकर मिश्रसे मनुष्य गति पाताहै और पाप पुण्य दोनोंके क्षय होनेसे मोक्षकोप्राप्तहोताहै।

वंदणु णिंदणु पडिकवणु पुरणहि कारण जेण ।
करइ करावइ अणुमणइ, एकुवि णाणि ण तेण ॥ १८९ ॥
वंदणु णिंदणु पडिकवणु, णाणिहि एउण वत्तु ।
एकुवि मेल्लिवि णाणमउ, सुद्धउ भाउ पवित्तु ॥ १९० ॥
वंदउ णिंदउ पडिकवउ, भाउ असुद्धउ जासु ।
परतसु संजम अत्थिणवि, जं भण सुद्धि ण तासु ॥ १९१ ॥

वंदनाअर्थात् देवगुरू शास्त्रकी पूजनिंदा अर्थात् अपनी निंदाकरना पश्चाताप करना और प्रतिक्रमण यह तीनों क्रिया जो पुण्य के उपजाने वाली हैं इनमें से एक को भी ज्ञानी पुरुप अर्थात् मोक्षकी सिद्धिकरने वाला नहीं करता है न कराता है और न इनकी अनुमोदना करताहै--एक ज्ञानमई और शुद्ध आत्मा के ध्यान को छोड़कर पवित्र भाव का धारक ज्ञानवान् वंदना आलोचना और प्रतिक्रमण नहीं करता है--वंदना आलोचना और प्रतिक्रमण वहही करताहै जिसकाभाव अशुद्धहै और जिसका मन शुद्ध नहीं उसके संयम नहींहै--भावार्थ मोक्षकी सिद्धि करने वालातो शुद्ध आत्मध्यान में लगताहै और पुण्य क्रियाओं को अर्थात् शुभोपयोग को भी त्यागताहै--क्यूंकि शुभोपयोग से शुद्ध और पवित्र भाव नहीं होतेहैं- पुण्य बंधही होता है और मोक्ष होता है शुद्धभावसे इसकारण पुण्य बंधके कार्य भी वह नहीं करताहै--वंदना आदिक शुद्ध भाव नहींहै इसहेतु अशुद्धहीहैं और जब भाव शुद्ध नहीं तब संयमनहीं अर्थात् मोक्षकी सिद्धि करनेवालेका संयम शुद्धात्मस्वरूप में लीन होनाही है ॥

सुद्धहि संजम सील तउ, सुद्धहि दंसण णाण ।
सुद्धहि कम्मक्खउ हवइ, सुद्धउ तेण पहाण ॥ १९२ ॥

उसकाही अर्थात् शुद्धोपयोगी काही संयम शुद्ध है उसही का शील शुद्धहै उसही का दर्शन ज्ञान शुद्धहै उसहीका कर्मोंका-

क्षय करना शुद्ध है उसहीका प्रधानपना अर्थात् परमात्मा होना शुद्ध है ॥

भाउ विसुद्धउ अप्पणउ, धम्म भणेविणु लेहु ।
चउगइ दुक्खहिं जो धरइ, जीउ पडंतहु एहु ॥ १९३ ॥

चतुरगति रूप दुःखसागर में पड़े हुवे जीवका जो उद्धार करता है वह अपना विशुद्धभाव है जिसको धर्म कहते हैं इस कारण शुद्ध भाव ग्रहण करना चाहिये ॥

सिद्धिहिं केरा पंथडा, भाउ विसुद्धउ एक्कु ।
जो तसु भावहिं मुणि चलइ, सो किम होइ विमुक्कु ॥ १९४ ॥

मुक्ति प्राप्तिका मार्ग एक विशुद्धभाव ही है और कोई मार्ग नहीं है जो मुनि शुद्ध भावों से गिरता है उस को मुक्ति कैसे हो सक्ती है ॥

जाहि भावहिं तहिं जाहि जिय, जंभावइ करि तं जि ।
के मइ मोक्ख ण अत्थि पर, चित्तहिं सुद्धि ण जं जि ॥ १९५ ॥

जहां चाहे:जावै जो चाहै क्रिया करै परन्तु जिसका मन शुद्ध नहीं है उसको मोक्ष नहीं प्राप्त हो सक्ता है ॥

सुहपरिणा में धम्मु पर, असु हें होइ अहम्मु ।
दोहिवि एहिवि वज्जियउ, सुद्धु ण बंधइ कम्मु ॥ १९६ ॥

शुभ परिणामों से धर्म अर्थात पुण्य होता है और अशुभ परिणामों से अधर्म अर्थात पाप होता है और इन दोनों से रहित हो कर शुद्ध परिणामों से कर्म्म बंध ही नहीं होता है भावार्थ न पुण्य होता है और न पाप ॥

दाणें लब्भइ भोउ पर, इंदत्तणु जितवेण ।
जम्मण मरण विवज्जियउ, पउ लब्भइ णाणेण ॥ १९७ ॥

दान करने से भोगों की प्राप्ति होती है इन्द्रयों को जीतने अर्थात् तप करने से स्वर्ग का इन्द्र होता है और ज्ञान से जन्म मरण से रहित अवस्था अर्थात् परमपदको प्राप्त होता है ॥

देउ णिरंजणु एउ भणइँ, णाणें मोक्खु णभंति ।
णाण विहूणउ जीवड़ा, चिरु संसार भमंति ॥ १९८ ॥

श्री वीतराग देवने ऐसा कहा है कि ज्ञान से ही मोक्ष होती है

जो जीव ज्ञान बिहीन है वह चिरकाल तक संसार में रुलता है ॥

णाण विहीणह मोक्खपउ, जीव म कासु विजोइ ।
बहुयइ सलिलु विरोलियइ, करु चोप्पडउ ण होइ ॥ १९९ ॥

ज्ञान विहीन होकर जीव किसी प्रकार भी मोक्ष पद प्राप्त नहीं कर सक्ता है जैसे कि कितना ही पानी विलोया जावे परन्तु हाथ चीकना नहीं होगा ॥

जं णिय वोहहिं वाहिरउ, णाणुजि कज्जु ण तेण, ।
दुक्खहिं कारण जेण तउ, जीवहिं होइ खणेण ॥ २०० ॥

निज शुद्ध आत्मा के बोध से रहित जो ज्ञान है वह कुछ कार्य कारी नहीं है वह दुःख काही कारण है ॥

तं णिय णाणुजि होइ णवि, जेण पवट्टइ राउ ।
दिणयर किरणहिं पुरउ जिय, किं विलसइ तमराउ ॥ २०१ ॥

वह ज्ञान नहीं है जिस से राग द्वेष उत्पन्न हो ज्ञान के सूर्य की किरणों के प्रकाश होने पर यह जीव राग रूप अंधकर को किस प्रकार भोग सक्ता है अर्थात् जैसे सूर्य के उदय में अंधेरा नहीं रहता इसही प्रकार ज्ञान प्राप्त होने पर राग द्वेष नहीं रहता है ॥

अप्पा मिल्लिवि णाणियहिं, अरणु ण सुंदरु वत्थु ।
जेण ण विसयहिं मणु रमइं, जाणं तहिं परमत्थु ॥ २०२ ॥

ज्ञानी पुरुषको आत्म स्वरूप के सिवाय अन्य कोई वस्तु सुंदर नहीं है जिन का मन विषयों में नहीं रमता है वह ही परमार्थ को जानते हैं ॥

अप्पा मिल्लिवि णाणमउ, चित्ति ण लागइ अरणु ।
मरगउ जेण वियाणियउ, ताहिं कम्चि कउ गरणु ॥ २०३ ॥

ज्ञानी का चित्त आत्मा के सिवाय और किसी वस्तु में नहीं लगता है जिसने मरकट मणि को जानलिया है वह कांच को क्या गिनता है ॥

भुंजंतहिं णिय कम्मु फलु, जो तहिं राउ ण जाइ ।
सो णवि वंधइ कम्मु फुणु, संचिउ जेण विलाइ ॥ २०४ ॥

कर्मों के फल के भोगने में जिस का राग दूर नहीं हुआ है अर्थात्

जो सुख दुःख मानता है वह फिर नवीन कर्म बांधताहै कर्मों का उदय आना और फलदेना तो संचित कर्मों का नाशहोनाहै परन्तु जो सुख दुःख मानताहै वह आगामी को फिर कर्म बांधलेताहै ॥

भुंजंतुवि णिय कम्म फलु, मोहँ जोजि करेइ ।
भाउ असुंदरु सुंदरुवि, सो परु कम्मु जणेइ ॥ २०५ ॥

कर्मों के फल भोगने में जो जीव मोहके कारण शुभ अशुभ भाव करता है वह नवीन कर्मों को उत्पन्न करता है ॥

जो अणुमित्तुवि राउ मणि, जाम ण मेल्लइ एत्थु ।
सोवि ण मुंचइ ताम जिय, जाणंतुवि परमत्थु ॥ २०६ ॥

जिसके मन में रंच मात्रभी राग रहगया है वह यदि परमार्थ को जानताभी है तो भी वह कर्मों के बंधन से नहीं छूटताहै ॥

बुज्झइ सत्थइ तउ चरइ, पर परमत्थु ण वेइ ।
ताव ण मुच्चइ जाम णवि, एहु परमत्थुण वेइ ॥ २०७ ॥

जो पुरुष शास्त्रको समझताहै और तपश्चरण करताहै परन्तु परमार्थ को नहीं जानताहै वह कर्मों का नाश नहीं करसक्ता है और परमार्थअर्थात् मोक्षको नहीं पासक्ताहै ॥

सत्थु पढंतुवि होइ जडु, जो ण हणेइ वियप्पु ।
देहिवसंतुवि णिम्मलउ, णवि मण्णइ परमप्पु ॥ २०८ ॥

शास्त्र को पढकर भी जो कोई विकल्प को दूर नहीं करताहै वह मूर्खहै और वह निर्मल शुद्ध परमात्मा को जो सांसारीक जीवों के देहमें बसताहै नहीं जानताहै ॥

बोहि णिमित्तें सत्थुकिल, लोए पढिज्जइ एत्थु ।
तेणवि बोहुण जासु वरु, सो किं मूढ ण तत्थु ॥ २०९ ॥

लोकमें सर्व शास्त्र बोध होनेके निमित्तही पढेजातेहैं–शास्त्रोंके पढने से भी जिसको श्रेष्ठ बोध नहीं हुवा अर्थात् परमार्थ को नहीं जाना वह किस हेतु से मूर्ख नहीं है अर्थात् अवश्य वह अत्यन्त मूर्ख है ॥

अक्खरडा जोयंतु ठिउ, अप्पि ण दिण्णउ चित्तु ।
कणविरहियउ पयालु जिम, पर संगहिउ बहुत्तु ॥ २१० ॥

जो कोई अक्षरों कोही ढूंढताहै और आत्मा में चित्त नहीं देता

है वह ऐसा है जैसा कोई मनुष्य बहुत सी पराल अर्थात् भूसी को जिसमें अनाज बिलकुल नहो इकट्ठी करताहो ॥

तित्थें तित्थ भमंनाहिं, मूढ़हिं मोक्खु ण होइ ।
णाण विवज्जिउ जेण जिय, मुणिवरु होइ ण सोइ॥ २११ ॥

तीर्थ स्थानों में भ्रमणे से मूढ मति को मोक्ष नहीं होसक्ती है इसही प्रकार ज्ञान रहित जीव मुनि नहीं होसक्ता है ॥

णाणिहिं मूढहिं मुणिवरहिं, अंतरु होइ महंतु।
देहुजि मिल्लई णाणियउ, जीवहिं भिएणु मुणंतु॥ २१२ ॥

ज्ञानी और मूर्ख मुनि में बड़ा भारी अंतर है--ज्ञानी तो जीव को शरीर से भिन्नजान कर देहको भी छोड़ना चाहताहै ॥

लेणहिं इच्छइ मूढ पर, भुवणावि एहु असेमु ।
बहु विहि धम्म मिसेण जिय, दोहावि एहु विसेसु॥ २१३ ॥

और जो मूर्ख है वह अनेक प्रकार धर्म के मिस अर्थात् बहाने से सारे जगत् को ग्रहण करना चाहताहै दोनों में अर्थात् ज्ञानी और मूर्ख साधुमें यह भेद है ॥

चेल्ला चेल्ली पोत्थियहिं, तूसइ मूढ णिभंतु ।
एयहिं लज्जइ णाणियउ, बंधहिं हेउ मुणंतु ॥ २१४ ॥

चेला चेली और शास्त्र में मूर्ख साधु निःसंदेह हर्ष मानताहै परन्तु ज्ञानी पुरुष इसको बंधका कारण जानकर लज्जा करताहै ॥

चट्टइ पट्टइ कुंडियइं, चिल्ला चिल्लियएहिं ।
मोह जणेवणु मुणिवरहं, उप्पहि पाडिय तेहिं ॥ २१५ ॥

चट्टी पट्टी औ कुंडा अर्थात् कलम दावात कागज तख़ती आदिक और चेला चेली यह सब मुनि को मोह पैदा करके नीचे गिराते हैं

केणवि अप्पउ वंचियउ, सिरु लुंचिवि छारेण।
सयलावि संग ण परिहरिय, जिणवर लिंग धरेण ॥ २१६ ॥

जिसने सिरके बालों का लोच करके दिगम्बर रूप धारण किया है परन्तु सर्व परिग्रह को नहीं छोड़ा है अर्थात् रागद्वेष जिस में विद्यमान है उसने अपने आप को ठगा है ॥

जे जिण लिंगु धरेवि मुणि, इट्ठ परिग्गह लिंति ।
छद्दि करेविणु तेजि जिय, सा पुणु छद्दि गिलंति ॥ २१७ ॥

जो मुनि दिगम्बर लिंग धारण कर के फिर इष्ट वस्तु को अर्थात् जो वस्तु अच्छी मालूम हो उस का ग्रहण करताहै वह वमन अर्थात् कै की हुई वस्तु को फिर खाता है ॥

लाहइं किचिहि कारणिण, जे सिव संगु चयंति ।
खीला लग्गिवि तेजि मुणि, देउलु देउ डहंति ॥ २१८ ॥

लोभ वा यशकीर्ति के वास्ते जो मुनि शिवसंग को छोड़ता है अर्थात् शुद्ध आत्म ध्यान से डिगता है वह एक कील के वास्ते देव मंदिर को जलाता है वा ढाता है ॥

अप्पउ मण्णइ जो जि मुणि, गरुयइं गंथहिं तित्थु ।
सो परमत्थें जिणभणइं, णउ बुज्झइ परमत्थु ॥ २१९ ॥

जो मुनि परिग्रह से ही अपने को बड़ा मानता है वह परमार्थ को नहीं पहचानता है परमार्थ कथन में श्रीजिनेंद्रदेव ने ऐसा कहा है ॥

बुज्झतहं परमत्थु जिय, गुरु लहु अत्थि ण कोइ ।
जीवा सयलावि बंभुपरु, जेण वियाणइं सोइ ॥ २२० ॥

जो परमार्थ को पहचानते हैं वह ऐसा कहते हैं कि जीव में छोटा बड़ा कोई नहीं है सबही जीव परमब्रह्म हैं ॥

जो भत्तउ रयणत्तयहं, तसु मुणि लक्खण एउ ।
अत्थउ कहिं मि कुडिल्लियइं, सो तसु करइ ण भेउ॥ २२१ ॥

जो मुनि रत्नत्रय की भक्ति करता है उसका यह लक्षण अर्थात् पहचान है कि वह सब जीवों को समान मानता है जीव किसी ही प्रकार का शरीरधारी हो वह उस में किसी प्रकार का भेद नहीं करता है-अर्थात् यह नहीं कहताहै कि यह तिर्यंच है यह मनुष्य है यह गधा है यह घोड़ा है ॥

जीवहं तिहुयणि संठियहं, मूढा भेउ करंति ।
केवल णाणइं णाणि फुडु, सयलुवि एकु मुणंति॥ २२२ ॥

तीनों लोक में बास करने वाले जीवों में मूर्ख लोग भेदकरते हैं अर्थात् उनको नारकी, देव, मनुष्य आदिक समझतेहैं परन्तु ज्ञानी पुरुष सर्व जीवों को ज्ञानमयी अर्थात् एकही प्रकारके समझतेहैं

जीवा सयलवि णाणमय, जम्मण मरण विमुक्क ।
जीव पएसहिं सयल सम, सयलवि सगुणहिं एक्क ॥ २११ ॥

सबही जीव ज्ञानमयी हैं और जन्म मरण से रहित हैं अर्थात् किसी जीवका आदिअन्त नहीं है सब जीव सदासे हैं और सदा रहेंगे और जीवके प्रदेश की अपेक्षा भी सब जीव समान हैं और शुद्धगुण अर्थात् अनन्त दर्शन अनन्तज्ञान अनन्त सुख आदिक गुणों की अपेक्षा भी सब जीव एकही हैं ॥

जीवहं लक्खणु जिणवरहिं, भासिउ दंसण णाण ।
तेण ण किज्जइ भेउ तहँ, जइ मण जाउ- विहाणु ॥ २२४ ॥

श्रीजिनेंद्रदेवने जीवका लक्षण दर्शन और ज्ञान वर्णन किया है जिसके मनमें प्रभात हुई है अर्थात् ज्ञानका प्रकाश हुवाहै वह जीवों में भेद नहीं करता है अर्थात् सब को दर्शन और ज्ञानकी शक्ति वाला मानता है ॥

बम्ह हु भुवणि वसंताहं, जे-णवि भेउ करंति ।
ते परमप्प पयासयर, जोइय विमलु मुणंति ॥ २२५ ॥

तीन लोक में वसतेहुवे परब्रह्म स्वरूप आत्माओं में जो कोई भेद नहीं करते हैं वह परमात्मा का प्रकाश करने वाले योगी सर्व जीवों को निर्मल और शुद्ध मानते हैं ॥

राय दोसवे परिहरिवि, जे सम जीव णियंति ।
ते समभाव परिट्ठिया, लहु णिव्वाणु लहंति ॥ २२६ ॥

जो मुनि राग द्वेष आदिक विपरीत भावों को दूर करके सर्व जीवोंको समान जानतेहैं वह समभाव में स्थिर होकर शीघ्र निर्वाण पदको प्राप्त करते हैं ॥

जीवहं दंसणु णाणु जिय, लक्खणु जाणइ जोजि ।
देह विभेएं भेउ तहँ, णाणिकि मण्णइ सोजि ॥ २२७ ॥

जो कोई दर्शन और ज्ञान को जीवका लक्षण जानताहै वह शरीर के भेदसे जीवोंमें कैसे भेदकर सक्ता है अर्थात् भेद नहीं करता है ॥

देहवि भेयइं जो कुणइं, जीवहं भेय विचित्त ।
सो णवि लक्खणु मुणइ तहं, दंसण णाण चरित्तु ॥ २२८ ॥

जो कोई शरीर के भेदसे जीवों में भेद करते हैं वह दर्शन ज्ञान और चारित्र को जो आत्मा के लक्षणहैं नहीं जानतेहैं ॥

अंगइं सुहुमई वादरई, विहिवसि हुंति जि वाल।
जिय पुणु सयलवि तित्तडा, सव्वत्थवि सय काल ॥ २२९ ॥

शरीर का छोटा बड़ा और बालक और वृद्ध आदिक होना यह सब कर्मों के वशसे है परन्तु निश्चयरूप अर्थात् असलियत में सर्व जीव सर्वथा सर्वकाल में एक समानहीहैं ॥

सत्तुवि मित्तुवि अप्पु परु, जीव असेसुवि एइ।
एक्कु करेविणु जो मुणइ, सो अप्पा जाणेइ ॥ २३० ॥

शत्रु मित्र आपा पर और अन्य सब जीवों को जो एकसमान मानताहै वहही आत्मा को जानताहै ॥

जो णवि मएणइ जीव जिय, सयलवि एक्क सहाव।
तासु ण थक्कइ भाउ सम, भवसायर जो णाव ॥ २३१ ॥

जो सब जीवों को एक स्वभावरूप नहीं मानताहै उसको सम भाव नहीं होताहै समभाव भवसागर से तिरनेके वास्ते नावके समान है ॥

जीवहं भेउ जि कम्म किउ, कम्मुवि जीउ ण होइ।
जेण विभिएणउ होइ तहं, कालु लहेविणु कोइ ॥ २३२ ॥

जीवों में जो भेद है वह कर्मों का किया हुवा है परन्तु कर्म जीव नहीं होजाते हैं अर्थात् जीवसे भिन्न हैं क्यूंकि काल लब्धि पाकर कर्म जीवसे अलग होजातेहैं ॥

एक्कु जिकरि मणविएण करि, मं करि वएण विसेसु।
एक्कें देवें जि वसइ, तिहुयणु एहु असेसु ॥ २३३ ॥

तू सब जीवों को एक समान ही मान यह मनुष्य है यह तिर्यंच है इत्यादि भेद मतकर एकही देव अर्थात् एक शुद्धआत्मा जिस प्रकारकी है तीन लोकके जीवों को तू वैसाही जान ॥

परु जाणंतुवि परम मुणि, पर संसग्गु चयंति।
पर संसग्गइं पर पयहं, लक्खहं जेण चलंति ॥ २३४ ॥

परममुनि परवस्तु को जान कर परवस्तु का संसर्ग छोड़ते हैं—और जो परवस्तु से संसर्ग करते हैं वह निशाना चूक जाते हैं

अर्थात् शुद्धआत्मध्यान से गिरजाते हैं ॥

जो समभावहं वाहिरउ, ते सहु मं कर संग ।
चिंता सायारि पडहि पर, अण्णुवि डज्झइ अंग ॥ २३५ ॥

जो कोई समभाव से रहित है उसके साथ संग अर्थात् मेल मत कर क्यूंकि उनका संग करने से तू चिंता के समुद्र में पड़जावैगा और व्याकुलता प्राप्त होकर तेरा शरीरभी जलैगा ॥

भल्ला हावि ण संति गुण, जहं संसग्गु खलेण ।
वइसाणरु लोहहं मिलिउ, तें पिट्टियइ घणेण ॥ २३६ ॥

दुष्ट की संगति से उत्तम गुणभी नाश होजाते हैं जैसे अग्नि भी लोहे की संगति से घण से पीटी जाती है ॥

जोइय मोहु परिच्चयाहि, मोहु ण भल्ला होइ ।
मोहासत्तउ सयलु जगु, दुक्ख सहंतउ जोइ ॥ २३७ ॥

यह मोह त्यागने ही योग्य है मोह किसी प्रकार भी भला नहीं है सर्व ही संसार मोहमें आसक्त हुवा दुःख उठारहा है ॥

जे सरसें संतुट्ठ मण, विरसि कसाउ वहंति ।
ते मुणि भोयण घार मुणि, णवि परमत्थु मुणंति ॥ २३८ ॥

जो स्वादिष्ट भोजन में संतुष्ट हैं और अस्वादु भोजन में द्वेष करते हैं अर्थात् पसन्द नहीं करते ऐसे मुनिको तू भोजन गृद्धि समझ वह परमार्थ को नहीं जानते हैं ॥

रूवि पयंगा सद्दि मय, गयफासें णासंति ।
उलिउल गंधें मच्छ रासि, तिम अणुराउ करंति ॥ २३९ ॥

रूप में आसक्त हुवा पतंग और शब्द अर्थात् करण इंद्रिय में आसक्त हुवा हिरण और स्पर्श इंद्रिय में आसक्त हुवा हाथी और गंध में आसक्त हुवा भौंरा और रस में आसक्त हुवा मच्छ नाश को प्राप्त होता है ॥

जो इय लोहु परिच्चयहि, लोहु ण भल्ला होइ ।
लोहा सत्तउ सयलु जगु, दुक्ख सहंतउ जोइ ॥ २४० ॥

तू इस लोभ का त्याग कर लोभ भला नहीं है—लोभ में ही आसक्त हुवा सारा जगत् दुःख उठा रहा है ॥

तालि अहिरणि वरि घण वडणु, संडस्सय लुंचोडु ।
लोहहं लग्गिवि हुयवहहं, पिक्खु पडंतउ तोडु ॥ २४१ ॥

लोहे के साथ लगनेसे अर्थात् लोहे का लोभ करके अग्निकी यह अवस्था होतीहै कि नीचे अहरण है ऊपर से घण पड़ता है बीचमें से संडासी ने पकड़ रक्खा है और टूट टूट कर चिंगारी अलग पड़रही हैं ॥

जोइय णेहु परिच्चयहि, णेहु ण भल्ला होइ ।
णेहा सत्तउ सयलु जगु, दुक्ख सहंतउ जोइ ॥ २४२ ॥

तू इस स्नेह (प्यार मुहब्बत) का त्यागकर स्नेह भला नहीं होता है सारा जगत् नेह ही में आसक्तहुवा दुःख उठारहा है ॥

जल सिंचणु पयणिद्दलणु, पुण पुण पीलण दुक्ख ।
णेहहं लग्गिवि तिलणियरु, जंति सहंतउ पिक्खु ॥ २४३ ॥

तिलको तेल के साथ नेहलगानेसे इतने दुःख उठाने पड़ते हैं कि वह पानी में भिगोया जाताहै पैरों से दल मलाजाताहै अर्थात इस प्रकार उसका छिलका उतारा जाताहै फिर कोल्हू में डालकर बार बार पीला जाताहै ॥

तेच्चिय धण्णा तेच्चिय सउरिसा, तेजियंतु जियलोए ।
वोद्दहदहम्मि पडिया, तरंति जे चेव लीलाए ॥ २४४ ॥

वह जीव धन्य हैं वह जीव सत्पुरुष हैं वेही इस जीव लोक में जीते हैं जो योवनरूपी द्रह में पड़कर लीला करते हुवे निकलते हैं अर्थात् सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र को प्रकाशते हैं ॥

मोक्खुजी साहिउ जिणवरहिं, छंडिवि वहु विह रज्जु ।
भिक्ख भरोडा जीव तुहुं, करहि ण अप्पउ कज्जु ॥ २४५ ॥

श्रीजिनेंद्र भगवान्ने मोक्षका साधन करने के वास्ते बहुत प्रकार का राजपाट छोड़ा तु भिक्षा से पेट भरने वाला अर्थात् कंगाल होकरभी अपना कार्य अर्थात् मोक्ष का साधन क्यूं नहीं करता है ॥

पावहि दुक्खु महंत तुहुं, जिय संसार भमंतु ।
अट्ठवि कम्मइं णिद्दलिवि, वचहि मोक्खु महंतु ॥ २४६ ॥

तूने संसार में भ्रमण करके महान् दुःख उठाये हैं अब तू आठकर्मों का नाश करके परमपद अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति कर ॥

जिय अणु मित्तुवि दुक्खडा, सहण ण सक्कहि जोइ ।
चउगइ दुक्खहं कारणइ, कम्मइ कुणहिं कि तोइ ॥ २४७ ॥

जो तू थोड़ासा दुःख भी नहीं सह सक्ता है तो तू कर्मों को क्यूं करताहै जो चारों गति के दुःखों के कारण हैं ॥

धंधइ पडियउ सयलु जगु, कम्मइं करइ अयाणु ।
मोक्खहिं करणु एक्कु खणु, णवि चिंतइ अप्पाणु ॥ २४८ ॥

मूर्ख जीव सारे जगत् के धंधों में पड़कर कर्म उपार्जन करताहै परन्तु अपनी आत्मा का ध्यान एक क्षणमात्र के वास्तेभी नहीं करता है जो मोक्षका कारण है ॥

जो खिहिं लक्खइ परिभमइ, अप्पा दुक्ख सहंतु ।
पुत्त कलत्तइ मोहियउ, जावण णाणु फुरंतु ॥ २४९ ॥

जो अपनी आत्मा को नहीं पहचानता है वह दुःख उठाता हुवा भ्रमता रहताहै-जिसका ज्ञान प्रकाश नहीं हुवाहै वह पुत्र और कलत्र में मोहित रहताहै अर्थात् आत्मा को नहीं पहचान सक्ता है ॥

जीव म जाणहिं अप्पणउ, घरु परियणु तणु इट्ठु ।
कम्मायत्तउ कारिमउ, आगमि जो इहि दिट्ठु ॥ २५० ॥

हे जीव तू घर परिवार शरीर और मित्रको अपना मत जान यह सब कर्मों के उपजाये हुवे हैं शास्त्र के जाननेवालोंने इसही प्रकार देखा है ॥

मोक्खु ण पावहिं जीव तुहुं, घरु परियणु चिंतंतु ।
तो वरि चिंतहि तउ जितउ, पावहिं मोक्खु महंतु ॥ २५१ ॥

हे जीव घर परिवार की चिंता में तुझको मोक्ष प्राप्त नहीं होसक्ता है इस कारण तू तपकी चिंताकर जिससे महान् मोक्षकी प्राप्तिहो

मारिवि जीवहं लक्खडा, जं जिय पाउ करीसि ।
पुत्त कलत्तहं कारणिण, तं तुहुं एक्कु सहीस ॥ ॥ २५२ ॥

पुत्र कलत्र के वास्ते जो तू लाखों जीवों को मारता है और पाप कमाताहै उसका फल तुझको अकेलाही भोगना पड़ैगा ॥

मारिवि चूरिवि जीवड़ा, जं तुहु, दुक्ख करीसि ।
तं तहं पासी अणंत गुणु, अवसइं जीव लहीसि ॥ २५३ ॥

हे जीव जीवों को मारकर और चूरकर जो तू दुःख देताहै उससे अनन्त गुणा दुःख तुझको अवश्य सहना पड़ैगा ॥

जीव वहं तहं णरयगइ, अभय पदाणें सग्गु ।
वे पहजवला दरिसिया, जहिं भावइ तहिं लग्गु॥ २५४ ॥

जीव की हिंसा करने से नरकगति होतीहै और अभयदान देनेसे अर्थात् अहिंसा व्रत धारण करने से स्वर्ग होताहै-दोनों पंथ प्रकट रूप दीखतेहैं जो अच्छा लगै उसही में लग ॥

मूढा सयलुवि कारिमउ, भुल्लउ मा तुस कंडि ।
सिवपय णिम्मलि करहि रइ, घरु परियलु लहु छंडि॥ २५५ ॥

हे मूर्ख तू सब कामों में भूलाहुआ है तुस अर्थात् छिलका इकट्ठा मतकरतू निर्मल शिवपद में अनुरागकर और घर परिवारको छोड़दे

जाइये सयलुवि कारिमउ, णिक्कारिमउ ण कोइ ।
जीवें जंतें कुडिण गयइ, उपाडिच्छंदा जोइ ॥ २५६ ॥

संसार के सब कामों में अविनाशी अर्थात् सदारहने वाला कोई कार्य्य नहीं है दृष्टान्त रूप देखो कि मरणेपर यह शरीर भी जीव के साथ नहीं जाता है ॥

देउलु देउवि सत्थ गुरु, तित्थुवि वेउवि कव्वु ।
वत्थु जु दीसइ कुसुमियउं, इंधणु होसइ सव्व ॥ २५७ ॥

मंदिर, प्रतिमा, शास्त्र, गुरु, तीर्थ, वेद, काव्य और जो कुछ फ़ल फूल इस संसार में दीखता है वह सब ईंधन होजायगा अर्थात् नाशको प्राप्तहोजायगा भावार्थ नित्य कोई वस्तु नहींरहैगी ॥

इक्कु जि मिल्लिवि बंभुपरु, भुवणुवि एहु असेसु ।
पुहमिहि णिम्मिउ भंगुरउ, एहउ वुज्झवि सेसु ॥ २५८ ॥

एक परब्रह्म अर्थात् शुद्ध आत्मा के सिवाय जगत में अन्य जो जो दशा देखने में आतीहै वह सब विनाशिक है तू इस प्रकार समझ ॥

जे दिट्ठा सू रुग्गमणि, ते अंथवणि ण दिट्ठ ।
तिं कारणि वढ धम्मु करि, धणि जोव्वणिका विट्ठ ॥ २५९ ॥

सूर्य्ये के उदय समय जो प्रकाश होताहै वह अन्त में अर्थात् संध्या समय नहीं रहता है इस कारण तू उत्तम धर्म का सेवन कर धन यौवन में क्या रक्खा है ॥

धम्मु ण संचिउ तउ ण किउ, रुक्खें चम्म मएण ।
खज्जवि जरउदेहियए, णरइ पडिव्वउ तेण ॥ २६० ॥

जो कोई धर्म संचय नहीं करता है और तप नहीं करता है उसके शरीर का चमड़ा वृक्षकी समान है अथवा वह चमड़े का वृक्ष है वह अभक्ष भक्षण करके निशंक प्रवरतता है और नरक में पड़ता है ॥

अरि जिय जिणपए भत्ति करि, सुहि सज्जणु अवहेरि ।
तें बप्पेणवि कज्जणवि, जो पाडइ संसारि ॥ २६१ ॥

अरे जीव तू जिनेंद्र के चरणोंकी भक्ति कर और मित्र कलत्र आदिक को छोड़दे इन मित्र आदिक से कुछभी प्राप्ति नहीं है वह संसार में ही डुबोने वाले हैं ॥

विसयहं कारणि सव्वु जणु, जिम अनुराउ करेइ ।
तिम जिण भासिए धम्म जइ, णउ संसारि पडेइ ॥ २६२ ॥

संसार के सर्व जीव विषयों के कारणों में जैसा अनुराग करते हैं यदि ऐसा अनुराग श्रीजिनेंद्र भाषित धर्म में करें तो संसार में न पड़ें ॥

जेण ण चिण्णउ तवयरणु, णिम्मलु चित्त करेवि ।
अप्पा वंचिउ तेण पर, माणुस जम्मु लहेवि ॥ २६३ ॥

जिसने निर्मलचित्त होकर तपश्चरण नहीं किया उसने मनुष्य जन्म पाकर अपने आपेको ठगा है ॥

ए पंचिंदिय करहड़ा, जिय मोकला मचारि ।
चरिवि असेसुवि विषय वणु, पुणु पाडहिं संसारि ॥ २६४ ॥

हेजीव तू इन पंच इन्द्रिय रूप ऊंटों को स्वच्छन्द मतचरा अर्थात् इन्द्रियोंको स्वछन्द होकर विषय भोग मत भोगने दे वह इन्द्रियां विषयों को भोगकर तुझको संसार में गिरादेंगी ॥

जोइय विसमी जोयगइ, मणु संठवण ण जाइ ।
इंदिय विसय जि सुक्खड़ा, वलि वलि तित्थु जि जाइ ॥ २६५ ॥

हे जोगी जोगकी गति बहुत कठिन है मन स्थिर नहीं होताहै मन इन्द्रियों के विषय सुखों पर चल चल जाता है अर्थात् मोहित होता है ॥

विसय सुहइ वेदिवहडा, पुणु दुक्खहं परिवाडि ।
भुल्लउ जीव मवावि तुहुं, अप्पुणु खंधि कुहाडि ॥ २६६ ॥

विषय सुख भोगने से फिर दुःखके परिवार को पालनाहै अर्थात् विषय सुख भोगने का फल बारबार दुःख उठानाहै हे मूर्ख जीव तू अपने कंधेपर आप कुहाड़ा मतमार ॥

संता विसय जु परिहरइ, वलि किज्जउं हउं तासु ।
सो दइवेण जि मुंडियउ, सीसु खुडिल्लउ जासु ॥ २६७ ॥

जो संत पुरुष विषयों को छोडतेहैं मैं उनपर किसप्रकार बलबल जाऊं अर्थात् वह धन्य हैं-जिसके शिरपर बालनहीं होतेहैं वह तो आपसे आपही मुंडा हुवा है इसही प्रकार चौथे काल में श्री अरिहंत देवोंके उपदेशसे विषय कषायों को छोड़कर जो मुनि होतेहैं उनका तो सहज ही मुनि होनाहै परन्तु जो इस पंचम कालमें विषयों को त्यागते हैं उनका आश्चर्य है वह धन्यहैं ॥

पंचहं णायकु वासि करहु, जेण हुंति वसि अण्ण ।
मूलवि णट्ठइं तरुवरहं, अवसइ सुक्कहिं पण्ण ॥ २६८ ॥

पांच इन्द्रियों का जो नायकहै अर्थात् मन उसको तू वशकर जिसके वश होने से सब इन्द्रियां वश में होजाती हैं जैसे कि वृक्ष की जड़ काटनेसे सारा वृक्ष सूख जाताहै ॥

विसयासत्तउ जीव तुहुं, कित्तिउ कालु गमीस ।
सिवसंगमु करि णिचलउ, अवसइं मोक्खु लहीस ॥ २६९ ॥

हे जीव विषय भोगों में आसक्त हुवे तुझ को बहुत काल व्यतीत होगये हैं अबतू निश्चल होकर शिव संगमकर अर्थात् शुद्ध आतमा का ध्यान कर जिससे तुझको अवश्य मोक्ष की प्राप्तिहो ॥

इहु शिवसंगमु परिहरिवि, गुरुवड कहिवि मजाहि ।
जे सिवसंगमि लीणणवि, दुक्खु सहंता जाहि ॥ २७० ॥

शिव संगम अर्थात् शुद्ध आत्मध्यान को छोड़कर हे शिष्य

तू और कहीं मतजा अर्थात् अन्यकिसी बात में चित्त मत लगा क्यूंकि जो आत्मध्यान में लीन नहीं होतेहैं वह दुःखही सहते हैं ॥

कालु अणाइ अणाइ जिउ, भवसायरुवि अणंतु ।
जीवें विरिणण पत्ताइं, जिणुसामिउ सम्मत्तु ॥ २७१ ॥

काल भी अनादि से है और जीव भी अनादि से है और संसारसागर अनन्त है परन्तु श्रीजिनेंद्र देव और सम्यक्त्व का पता जीवके बिना और कहीं न लगा अर्थात् सारे जगत् को ढूंढ मारो परमात्मा और सम्यक्त्व यह दोवातें जीवकेही लक्षण में मिलैंगी अन्य कहीं भी नहीं मिलैंगी इसकारण आत्मध्यानही में लगना चाहिये ॥

घर वासउ मा जाणि जिय, दुक्किय वासउ एहु ।
पासु कयंतें मंडियउ, अविचलु णीसंदेहु ॥ २७२ ॥

हे जीव घरकावास अर्थात् स्त्री पुत्र आदिक में रहकर घर बसाना जोहै इस को तू इस के सिवाय और कुछ मत जान कि यह निःसंदेह एक अचल फांसी तेरे टांगने को गाड़ी गई है इस वास्ते घर वास छोड़ना योग्य है ॥

देहुवि जेत्थु ण अप्पणउ, तहिं अप्पणउ किं अण्णु ।
परकारणि म गणरुव तुहुं, सिव संगमु अवगण्णु ॥ २७३ ॥

जब देही अर्थात् शरीर भी अपना नहीं है तब अन्य कौन पदार्थ अपना हो सक्ताहै अर्थात् कोई पदार्थ अपना नहीं है इस कारण हे उत्कृष्टजीव तू परके कारण शिव संगम अर्थात् शुद्ध आत्मध्यान का निरादर मतकर अर्थात् आत्मध्यानको मतछोड़ ॥

करि सिव संगमु एक्कुपर, जहिं पा विज्जइ सोक्खु ।
जो इय अण्णु म चिंति तुहुं, जेण ण लब्भइ मोक्खु ॥ २७४ ॥

तू एक ही से शिव संगम कर अर्थात् एक शुद्ध आत्मा का ही ध्यान रख जिससे तुझको सुखकी प्राप्तिहो अन्य किसी वस्तु की चिंता मतकर क्यूंकि अन्य पदार्थकी चिंता करने से तुझको मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी ॥

वलि किउ माणुस जम्मडा, देक्खं तहं पर सारु ।
जइ उट्ठब्भइ तो कुहइ, अह डज्झइ तोच्छारु ॥ २७५ ॥

मनुष्य शरीर के बलहारी, जो देखने में अति सुंदरहै परन्तु यदि इसका ढकाढोल खोलदिया जावे तो अति घिणावना है और यदि इसको आग लगजावै तो राख होजातीहै ॥

उच्चलि चोप्पडि चेट्ठकारि, दोहि सु मिट्ठा हार।
देहह सयल गिरत्थ गय, जह दुज्जणि उवयार ॥ २७६ ॥

देहको धोना अर्थात् कुरला करना हाथ धोना और चोपड़ना अर्थात् तेल फुलेल लगाना और कुंकुमआदिक लगाना मीठा भोजन देना यह सब निरर्थक है जैसा कि दुर्जन का उपकार करना व्यर्थ होताहै ॥

जेहउ जज्झरु गारयघरु, तेहउ जोइय काउ।
गारय गिरंतरु पूरियउ, किम किज्जइ अगुराउ ॥ २७७ ॥

जैसे झाजरा अर्थात् छिद्र सहित बिष्टा का पात्रहै जिसमें से विष्टा गिरता रहै एसाही यह शरीर है जिसमें से मलमूत्र आदिक निकलता रहताहै-ऐसे शरीर के साथ कैसे अनुरागकियाजावै ॥

दुक्खइं पावइं असुचियइं, तिहुयणि सयलइं लेवि।
एयहि देहु विगिम्मियउ, विहिण वइरु मुणेवि ॥ २७८ ॥

विधना अर्थात् कर्मोंने जीव के साथ वैर करके समस्त दुःख तथा समस्त पाप और समस्त अशुचि पदार्थ इकठे करके यह शरीर बनाया है ॥

जो इय देहु घिणावणउ, लज्जहि किएण रमंतु।
णाणिय धम्म हरइ कराहि, अप्पा विमलु करंतु ॥ २७९ ॥

हे ज्ञानी ऐसी घिणावणी देहके साथ प्रीति करने में लज्जाकर तू इससे क्यूं रमताहै इसको छोड़ और अपनी आत्माको निर्मल करने के अर्थ धर्मकर ॥

जो इय देहु परिच्चयहि, देहु ण भला होइ।
देह विभिण्णउ णाणमउ, सो तुहुं अप्पा जोइ ॥ २८० ॥

यह जो देह है इस का तू त्याग कर, देह भली नहीं है देह से भिन्न जो ज्ञानमयी आत्मा है उसही की तू खोज कर ॥

दुक्खहं कारण मुणिवि मणि, देहुवि एहु चयंति।

जित्थु ण पावहिं परम सुहु, तित्थु कि संतवसंति ॥ २८१ ॥

सत्पुरुष देह को दुःख का कारण जानकर देहकी ममत्व को छोड़ते हैं जिसमें परमसुख की प्राप्ति न हो उसमें सत्पुरुष कैसे रमैं अर्थात् नहीं रमते हैं ॥

अप्पा यत्तउ जं जि सुहु, तेण जि करि संतोसु ।

पर सुहु वढ चिंततयहं, हियइ ण फिट्टइ सोसु ॥ २८२ ॥

तू अपने आत्मीक सुख में संतोषकर पर पदार्थ से जो सुख उत्पन्न होता है उस से तृष्णा दूर नहीं होती है ॥

अप्पहं णाणु परिच्चइवि, अण्णु ण अत्थि सहाउ ।

एहु जाणेविणु जोइयहो, परह म बंधहु राउ ॥ २८३ ॥

आत्मा ज्ञान स्वभाव है सिवाय इसके उसका और कोई स्वभाव नहींहै ऐसा जानकर हे योगी अन्य किसी पदार्थ से तू रागमतकर॥

विसय कसायहिं मण सलिलु, णवि डहुलिज्जइ जासु ।

अप्पा णिम्मलु होइ लहु, वढ पच्चक्खु वि तासु ॥ २८४ ॥

जिसका मन विषय कषाय में नहीं डोलता है अर्थात् संकल्प विकल्प से रहित है उसको सम्यक्तरूप नेत्रों से अपना शुद्धआत्मा प्रत्यक्ष नजर आता है ॥

अप्पा परहं ण मेलविउ, मणु मारिवि सहसत्ति ।

सो वढ जोएं किं करइ, जासु ण एही सत्ति ॥२८५॥

अपनी आत्मा को परपदार्थ में न लगाना और समाधि रूप हथियार से मनको मारना यह काम जिससे नहीं होसक्ते हैं वह योगी बनकर क्या करैगा अर्थात् उसका योग वृथाहै ॥

अप्पा मिल्लिवि णाणमउ, अण्णुजि झायहिं झाणु ।

वढ अण्णाण वियंभि यहं, कउ तहं केवल णाणु ॥ २८६ ॥

अपनी ज्ञानमयी आत्मा को छोड़कर जो अज्ञानी पर पदार्थ का अवलम्बन करके ध्यान करता है अर्थात् पर पदार्थ में ध्यान लगाताहै उसको केवल ज्ञान कैसे प्राप्त होगा भावार्थ जो अपनी शुद्ध आत्मा का ध्यान नहीं करता उसको केवल ज्ञान प्राप्त नहीं हो सक्ता है ॥

सुण्णउ पउ झायंताहं, वालिवालि जोइयडाहं ।

समरस भाउ परेण सहु, पुण्णु ण पावावि जाहिं ॥ ॥ २८७ ॥

जो योगी पुण्य पापसे रहित हैं और शुद्ध आत्माका ध्यान शुभ अशुभ विचार से रहित होकर करते हैं वह धन्य हैं मैं उनपर बलिहारा जाऊं ॥

उव्वासि वसिया जो करइ, वसिया करइ जो सुण्णु ।
वलि किज्जउ तसु जोइयहं, जासु ण पाउ ण पुण्णु ॥ २८८ ॥

जो उजड़े हुवे को बसाता है और बसे हुवे को उजाड़ताहै अर्थात् अपनी आत्मामें शुद्ध स्वभाव को प्राप्तकरता है और राग-द्वेषादिक भावों को दूरकरता है और जिसके पाप है न पुण्य है ऐसे योगीपर मैं कैसे बलिहार जाऊं अर्थात् वह योगी धन्यहैं।

तुट्टइ मोहु तडात्ति जहिं, मणु अत्थवणु होजाइं ।
सो सामिय उवएसु कहि, अण्णें देवें काइं ॥ २८९ ॥

हे स्वामी ऐसा उपदेश कह जिससे तुरंत मोह टूटजावै और मन स्थिर होजावै अन्य किसी देव आदिक से क्या प्रयोजन है अर्थात् हमारा प्रयोजन जो मुक्ति प्राप्त करने का है वह किसी देव आदिक से पूरा नहीं होसक्ता है मुक्ति तो मोह के दूरहोने और मन के स्थिरहोने से ही प्राप्तहोसक्ती है इसकारण उस ही का उपदेश कर।

णासावि णिग्गउ सासडा, अंवरि जित्थु विलाइ ।
तुट्टइ मोहु तडत्ति तहिं, मणु अत्थवण होजाइ ॥ १९० ॥

जहां अर्थात् जिस ध्यान में नाक से निकलनेवाला सांस तालूरंध्र (दशवां द्वार) से निकलने लगता है उस ध्यान में मोह तुरंत ही दूर होजाता है और मन स्थिर होजाता है-(ध्यान का विषय अन्य ग्रन्थों से पढ़ना चाहिये तव यह कथन समझ में आवैगा)

मोहु विलिज्जइ मणु मरइ, तुट्टइ सासुणि सासु ।
केवलणाणुवि परिणवइ , अंवरि जाहं णिवासु ॥ १९१ ॥

जिसका निज शुद्ध आत्मा में निवास है अर्थात् जो कोई अपनी आत्मा के ही ध्यान में मग्न है उसका मोह नाश होजाता है,मन मरजाता है अर्थात् स्थिर होजाताहै और नाक से सांस लेना भी टूटजाता है अर्थात् सांस तालूरंध्र से निकलता है उस ही को केवल ज्ञानहोता है-और मुक्ति प्राप्तहोती है॥

जो आयासहिं मणु धरइ, लोयालोय पमाणु ।
तुट्टइ मोहु तडत्ति तसु, पावइ परहं पवाणु ॥ २९१ ॥

जो कोई आत्मा को आकाश के समान लोक और अलोक के बराबर अपने मनमें धारण करता है उसका मोह तुरंत टूटजाता है और परमपद प्राप्तहोता है—भावार्थ जिस प्रकार आकाश स्वच्छ है पर द्रव्य से भिन्नहैं और लोकालोक में व्याप्तहै इसही प्रकार आत्मा भी स्वच्छ और निर्मल है और सर्वज्ञ होने के कारण उसका ज्ञान लोकालोक में फैलता है इस हेतु जो कोई आकाश के समान अपनी जीवात्मा का विचार करताहै वह मोहका नाश करताहै ॥

देहि वसंतुवि णवि मुणिउ, अप्पा देउ अणंतु ।
अंवरि समरासि मणु धरिवि, सामिय णट्ठु णिभंतु॥ २९३॥

हे स्वामी मैंने वृथा काल गंवाया और अपनी देहमें वसती हुई अनन्तशक्तिवान् आत्मा को न जाना और आकाश के समान समता भाव मनमें धारण न किया ॥

सयलवि संग ण मेल्लिया, णवि किउ उवसम भाउ ।
सिवपय मग्गुवि मुणिउ णवि, जहिं जोएइं अणुराउ ॥ २९४ ॥
घोरुण चिण्णउ तवयरणु, जंणिय वोहहंसारु ।
पुण्णवि पाउविं दट्ठु णवि, किम छिज्जइ संसारु ॥ २९५ ॥

सर्वप्रकारके परिग्रह को दूरनहीं किया और न उपसमभाव धारण किया और मोक्ष और मोक्ष के मार्ग को जिससे योगी जन अनुराग करते हैं नहीं जाना और वह तपश्चरण नहीं किया दुर्द्धरपरीसह काजीतना जिसका चिह्न है और जो सारभूत है अर्थात् मोक्ष प्राप्तिका असली कारण है—और पुण्य और पाप को नष्ट नहीं किया तब यह संसार परिभ्रमण कैसे दूरहो ॥

दाणु ण दिण्णउ मुणिवरहं, णवि पुज्जिउ जिणणाहु ।
पंच ण वंदिय परमगुरु, किम होसइ सिवलाहु ॥ २९६ ॥

मुनिको दान नहीं दिया और श्रीजिनेंद्रदेवकी पूजा नहीं की और पंचपरमेष्ठी की वंदना नहीं की तब मोक्ष सुखका लाभ कैसे होगा ॥

अद्धुम्मीलिय लोयणइ, जोउ किज्झं पियएहिं ।

एमइ लब्भइ परमगइ, णिच्चिंताहि ठियएहिं ॥ २९७ ॥

आधी आंख खुले रखने से वा आंख बिल्कुल बंदकरलेने से परम पदकी प्राप्ति नहीं होती है वह तो चिन्ता के दूर होने से ही प्राप्तहोता है-भावार्थ ध्यान करने के समय आधी आंख उघाड़कर वा सारी आंख मूंदकर बैठजाने से क्याहोता है-जबतक चिन्ता दूर नहीं हुई है ॥

जोइय मेल्लहि चिंत जइ, तो तुट्टइ संसारु ।
चिंता सत्तउ जिणवरुवि, लहइ ण हंसाचारु ॥ १९८ ॥

यदि तू चिन्ता को छोड़देगा तो तेरा संसारपरिभ्रमण दूर होजायगा श्रीजिनेंद्रभगवान् कोभी संसार अवस्था में जबतक चिंताका सद्भाव रहा तबतक आत्मस्वरूप को प्राप्त न होसके ॥

जोइय दुम्मइ कवण तुहुं, भव कारणि ववहारि ।
बंभु पवंचहि जो रहिउ, सो जाणिवि मणु मारि ॥ १९९ ॥

हे जीव तुझ में कैसी मूर्खताई है कि संसार में परिभ्रमण करने का कारण जो व्यवहार है उसमें तू लगता है तू सर्वप्रकार के प्रपंच से रहित अर्थात् शुद्ध ब्रह्मको जान और अपने मन को मार अर्थात् स्थिर कर ॥

सव्वहिं रायहिं छह रसहिं, पंचहि रूवहिं जंतु ।
चित्तु णिवारिवि झाइ तुहुं, अप्पा देउ अणंतु ॥ २०० ॥

सर्वप्रकार के राग, षटरस, पंच प्रकार के रूप को चित्त में से दूर करके तू अपनी आत्मारूपी अनन्त देव का ध्यान कर ॥

जेण सरूवें झाइयइ, अप्पा एहु अणंतु ।
तेण सरूवें परिणवइ, जहं फालिहउ मणि मंतु ॥ २०१ ॥

यह अनन्त आत्मा जिस स्वरूप का ध्यान करती है तिसही रूप परिणव जाती है अर्थात उसही रूप होजाती है जैसे फटिक मणि के साथ जिस रंग की डांक लगा दीजावे वैसाही रंग मणि का होजाता है ॥

एहु जो अप्पा सो परमप्पा, कम्म विसेसें जायउ जप्पा ।
जावहि जाणइ अप्पें अप्पा, तावइं सो जी देउ परमप्पा ॥ २०२ ॥

यह जो आत्मा है यह ही परमात्मा है कर्मों के वशसे परा-

घीन होरहा है और जब अपनी आत्मा को जान लेता है तब ही वह परम देव होजाता है ॥

जो परमप्पा णाणमउ, सो हउ देउ अणंतु ।
जो हउ सो परमप्पु परु , एहउ भावि णिभंतु॥ २०३ ॥

जो परमात्मा ज्ञानमयी है वह ही अनन्त देव है उसही परमात्मा को तू निःसंदेह अनुभवन कर॥

णिम्मल फलिहहं जेम जिय, भिण्णउ परकिय भाउ ।
अप्प सहावहं तेम मुणि, सयलुवि कम्म सहाउ॥ २०४ ॥

जिस प्रकार निर्मल फटिक मणि डांक के लगने से डांक के रंग को ग्रहण करलेती है परन्तु असलियत में वह शुद्धही होती है इस ही प्रकार तू अपनी आत्मा को जान कि कर्मों के कारण उस का विपरीत भाव होरहा है असल में आत्मा शुद्धही है ॥

जेम सहाँवे णिम्मलउ, फलिहउ तेम सहाउ ।
भंतिए मइलु म मणिण जिय, मइलउ देक्खिवि काउ॥ २०५ ॥

जिस प्रकार फटिक मणि निर्मल है इसही प्रकार आत्मा निर्मल है तू शरीर को मैला देखकर अपनी आत्मा को मैला मत मान ॥

रत्ते वत्थे जेम वहु, देहु ण मण्णइ रत्तु ।
देहें रत्तें णाणि तहं, अप्पु ण मण्णइ रत्तु॥ २०६ ॥
जिण्णों वत्थें जेम वहु, देहु णं मण्णइ जिण्णु ।
देहें जिण्णें णाणि तहं,अप्पु ण मण्णइ जिण्णु॥ २०७ ॥
वत्थु पणट्ठइं जेम वुहु, देहु ण मण्णइ णट्ठु ।
देहें णट्ठें णाणि तहं, अप्पु ण मण्णइ णट्ठु ॥ २०८ ॥
भिण्णउ वत्थु जि जेम जिय,देहहो मण्णइ णाणि।
देहु विभिण्णउ णाणि तहं, अप्पहं मण्णइ जाणि॥ २०९ ॥

जिस प्रकार लालवस्त्र पहने हुवे मनुष्य का शरीर लाल रंग का नहीं समझा जाताहै इसही प्रकार ज्ञानी जन लालरंगका शरीर देखकर आत्माको लालरंगकी नहीं मानते हैं॥

जिस प्रकार जीर्ण अर्थात् बोदे पुराने वस्त्रको देखकर शरीर जीर्ण नहीं माना जाताहै इसही प्रकार ज्ञानी पुरुष देहको जीर्ण देखकर आत्माको जीर्ण नहीं मानता है ॥

वस्त्रके नाश होजाने से जिस प्रकार देहका नाश होना नहीं माना जाता है इसही प्रकार ज्ञानी पुरुष देहके नष्ट होजाने से आत्माका नष्ट होना नहीं मानते हैं ॥

जिस प्रकार ज्ञानी पुरुष वस्त्रको देहसे जुदा मानता है इसही प्रकार ज्ञानवान् आत्माको देहसे भिन्न जानताहै ॥

एउ तणु जीवड तुज्झु रिउ, दुक्खइं जेण जणेइ ।
सो परजाणहि मित्तु तुहु, जो तणु एहु हणेइ ॥ ३१० ॥

हे जीव यह शरीर तेरा वैरी है क्यूंकि दुक्खों को उपजाता है इस कारण जो कोई तेरे शरीर को हनन करता है मारताहै उस को तू अपना मित्र समझ ॥

उदयहं आणिवि कम्मु मइं, जं भंजेव्वउ होइ ।
तें सइं आविउ खविउ मइ, सो परलाहुज़ि कोइ॥ ३११ ॥

महातपस्वी योगी जन पूर्व संचित कर्मों को अपने आत्मिक वलसे उदय में लाकर नष्ट करते हैं—वहही कर्म यदि आपही उदय में आकर नष्ट हो जावै तो बहुतही भली बात है अर्थात् कर्मके उदय आनेपर और किसी प्रकारका कष्ट होनेपर आनन्द मानना चाहिये कि इस प्रकार यह कर्म जो उदय आगयाहै अपना फल देकर नष्ट होजावेगा कर्म के उदय से जो कष्ट आवै उसमें क्लेश नहीं मानना चाहिये ॥

णिट्ठुर वयणु सुणेवि जिय, जइ मणि सहण ण जाइ ।
तो लहु भावहिं बंभु परु, जें मणु झत्ति विलाइ ॥ ३१२ ॥

हे जीव यदि तेरा मन खोटे वचनों को नहीं सह सक्ता है तो परब्रह्म अर्थात् शुद्ध आत्मा के ध्यान में लीन होजा जिससे तेरा मन आनंदित होजावै ॥

लोउ विलक्खणु कम्म वसु, इत्थु भवंतरि एइ ।
चोज्जु किइहु जइ अप्पि ठिउ, इत्थ जि भवि ण पडेइ ॥ ३१६ ॥

कर्मों के वश होकर संसारी जीवों के नाना प्रकार के भेद होरहे हैं अर्थात् कोई पशु है कोई मनुष्य है कोई धनाढ्य है कोई कंगाल है इत्यादिक—और कर्मों के ही कारण यह जीव संसार में रुलता है—यदि यह जीव अपनी आत्मा में स्थिर होजावे अर्थात् कर्मों का

नाश कर देवे तो इस को संसार में रुलना न पड़े इस में कोई आ-श्चर्य की बात नहीं है ॥

अवगुण गहणइ महु तणइ, जइ जी वह संतोसु ।
ते तहं सुक्खहं हेउ हउ, इउ मण्णिवि चइ रोसु॥ ३१४ ॥

जो मेरे अवगुणों को ग्रहण करते हैं अर्थात् मेरी बुराई करते हैं उन को मेरी बुराई करने में आनन्द आता है इस कारण मैं उन के आनन्द का हेतु हुवा अर्थात् मेरे कारण उन का उपकार हुवा ऐसा मान कर और रोष अर्थात् क्रोध को दूर करके संतोष ग्रहण करना चाहिये ॥

जो इय चिंति म किंपि तुहुं, जइ वीहिउ दुक्खस्स ।
तिल तुस मित्तुवि सल्लडा, वे यण करइ अवस्स॥ ३१५ ॥
मोक्खु म चिंतहि जोइया, मोक्खु ण चिंतिउ होइ ।
जेण णिबद्धउ जीवडउ, मुक्खु करीसइ सोइ॥ ३१६ ॥

यदि तू दुःख से डरता है तो किसी प्रकार की भी चिंता मतकर अर्थात् चिंता को छोड़ जैसे ज़रासा कांटा भी दुःखदाई होता है ऐसेही ज़रासी चिंता भी दुःखदाई होतीहै-

हे योगी तू मोक्षकी भी चिंता मतकर क्यूंकि चिंता से मोक्ष नहीं मिलता है-जिसने जीव को बांध रक्खा है उस ही से तू जीव को छुड़ा भावार्थ-चिंता को दूर कर ॥

सयल वियप्पहं जो विलउ, परम समाहि भणंति ।
तेण सुहासुह भावडा, मुणि सयलवि मेल्लंति॥ ३१७ ॥

समस्त विकल्पों से रहित होने को परम समाधि कहते हैं इस कारण मुनि महाराज समस्त शुभ अशुभ भावों का त्यागकरते हैं

परम समाहि महा सरहि, जे बुड्डहि पइसेवि ।
अप्पा थक्कइ विमलु तहं, भव मल जंति वहेवि॥ ३१८ ॥

जो कोई परम समाधि रूप महा सरोवर में सर्वांग डूबता है अर्थात् शुद्ध आत्म ध्यान में लीन होता है वह संसार रूपी मैल को धोकर शुद्ध आत्मा होजाता है ॥

घोर करंतुवि तवयरणु, सयलावि सत्थ मुणंतु ।
परम समाहिविवज्जियउ,णवि देक्खइ सिउसंतु ॥ ३१९ ॥

जो घोर तपश्चरण करता है और जिसने सब शास्त्र भी पढ़ लिये हैं परन्तु जिसमें परम समाधि नहीं है तो वह शिव संत अर्थात अपनी शुद्ध आत्माको नहीं देखसक्ता है-भावार्थ मोक्ष नहीं पासक्ता है ॥

विसय कसाय विणिद्दलिवि,जो ण समाहि करंति ।

ते परमप्पहं जोइया , णवि आराहय हुंति ॥ ३१० ॥

जो विषय कषाय को नाश करके परम समाधि को नहीं करते हैं वह योगी परमपद की आराधना करनेवाले नहीं हैं ॥

परम समाहि धरेवि मुणि, जे परंबंभु ण जंति ।

ते भव दुक्खइं बहु विहइं, कालु अणंतु सहंति ॥ ३११ ॥

जो मुनि परम समाधि लगाकर परमब्रह्म अर्थात् शुद्ध आत्मा का अनुभवन नहीं करते हैं वह बहुत कालतक बहुत प्रकार के दुःखों को सहते रहते हैं अर्थात् संसार में भ्रमते रहते हैं ॥

जाम सुहासुह भावडा, णवि सयलवि तुट्टंति ।

परम समाहि ण ताम मणि, केवलि एम भणंति ॥ ३२२ ॥

जबतक सर्व शुभाशुभ भाव दूर नहीं होजाते हैं तबतक परम समाधि नहीं होती है ऐसा श्री केवली भगवान् ने कहा है ॥

सयल वियप्पहं तुट्टाहं , सिवपिय मग्गि वसंतु ।

कम्म चउक्कइं विलयगइ, अप्पा होइ अरहंतु ॥ ३२३ ॥

सर्वप्रकार के विकल्प को दूर करके और मोक्ष मार्ग को ग्रहण करके चार घातिया कर्मों का नाश करके यह आत्मा अर्हंत होजाती है-अर्थात् केवल ज्ञान और परमानन्द प्राप्तहोजाता है ॥

केवल णाणंह अणवरउ, लोयालोउ मुणंतु ।

णियमेंइं परमाणंद मउ, अप्पा होइ अरहंतु ॥ ३२४ ॥

यह आत्माही अर्हंत पदको प्राप्त करतीहै और आवरण रहित केवल ज्ञान से लोक अलोककी सर्व वस्तु को जानतीहै और परमानन्दमयी है ॥

जो जिणु परमाणंद मउ, केवल णाण सहाउ ।

सो परमप्पउ परमपउ, सो जिय अप्प सहाउ ॥ ३२५ ॥

श्रीजिनेंद्र भगवान् परमानन्दमयी और केवल ज्ञान सुभाव के

धारीहैं वहही उत्कृष्ट परमपद जीवात्माका सुभावहै अर्थात् आत्मा का असली सुभाव वही है जो परमात्माका है और आत्माही परमात्मपदको प्राप्त होकर जिन बनजातीहै ॥

जीवा जिणवर जो मुणइ, जिणवर जीव मुणेइ ।
सो समभाव परिट्ठियउ, लहु णिव्वाणु लहेइ ॥ ३२६ ॥

जो कोई पुरुष जीवको जिनेंद्र देव मानताहै और जिनेंद्र भगवान् को जीव मानता है अर्थात् यह समझता है कि संसारी जीव ही शुद्ध होकर जिनेंद्र देव होजाता है वह पुरुष समभाव में स्थित हुवा शीघ्र ही निर्वाण पदको प्राप्त करता है ॥

सयलहं कम्महं दोसहंवि, जो जिणु देउ विभिण्णु ।
सो परमप्प पयासु तहुं, जोइय णिय में मण्णु ॥ ३२७ ॥

सर्व कर्मों और दोषों से रहित श्रीजिनेंद्रदेव को ही हे योगी तू परमात्म प्रकाश समझ ॥

केवल दंसण णाण सुहु, वीरिउ जोजि अणंतु ।
सो जिणु देउ जि परम मुणि, परम पयासु मुणंतु ॥ ३२८ ॥

केवल दर्शन केवल ज्ञान अनन्त सुख अनन्त वीर्य इस प्रकार अनन्त चतुष्टय के धारी श्रीजिनेंद्रदेव ही परम मुनि हैं और वह ही परात्मा प्रकाश हैं ॥

जो परमप्पउ परमपउ, हरिहरु बंभु विबुद्ध ।
परमपयासु भणंति मुणि, सो जिणुदेउ विसुद्ध ॥ ३२९ ॥

जो परमात्मा परमपदहै जिसको हरिहर वा ब्रह्म वा बुद्ध वा परमात्म प्रकाश कहतेहैं वह शुद्ध जिनेंद्रदेव है ॥

झाणें कम्मक्खउ करिवि, मुक्कइ होइ अणन्तु ।
जिणवर देवइ सोजि जिय, पभणिउ सिद्धु महंतु ॥ ३३० ॥

श्री जिनेंद्रदेवने इस जीवको सिद्ध महंत बताया है जिसने ध्यान के द्वारा कर्मोंका नाश करके अनन्त मुक्तिको प्राप्त कियाहै

जम्मण मरण विवज्जियउ, चउगइ दुक्ख विमुक्कु ।
केवल दंसण णाणमउ, णंदउ तित्थु जि मुक्कु ॥ ३३१ ॥

वह सिद्ध भगवान् जन्ममरण से छूटकर और चारों गतिके दुःखों से रहित होकर केवल दर्शन और केवल ज्ञान के आनन्द में मुक्ति स्थान में रहते हैं ॥

जे परमप्प पयासु मुणि, भावें भावहिं सत्थु ।
मोहु जिणेविणु सयलु जिय, ते बुज्झहिं परमत्थु ॥ ३३२ ॥

जो कोई मुनि इस परमात्म प्रकाश को शुद्धभाव से ध्यावैंहैं और जिन्होंने समस्त मोह कर्मको जीतलिया है वेही परमात्मपदको पहचानते हैं ॥

अण्णाजे भत्तिए, जे मुणहिं, एहु परमप्प पयासु ।
लोयालोय पयास यरु, पावहिं तेवि पयासु ॥ ३३३ ॥

अन्य जो मुनि परमात्मा प्रकाश के भक्त हैं वह सर्व लोकालोकको प्रकाशकरनेवाला प्रकाश अर्थात् ज्ञान प्राप्त करते हैं ॥

जे परमप्प पयास यहं, अणुदिणु णाउ लयंति ।
तुट्टइ मोहु तडत्ति तहिं, तिहुवण णाह हवंति ॥ ३३४ ॥

जो प्रतिदिन परमात्मा प्रकाश का नाम लेते हैं उनका मोह कर्म तुरंत टूटजाता है और वह तीनलोक के नाथ होजाते हैं ॥

जे भव दुक्खहं बीहियां, पउ इच्छहिं णिव्वाणु ।
एहु परमप्प पयास यहं, ते पर जोग्ग वियाणु ॥ ३३५ ॥

इस परमात्माप्रकाश ग्रन्थको आराधन करने के वहही योग्य हैं जो संसार दुःख से भयभीत हैं और निर्वाणपदको चाहते हैं ॥

जे परमप्पय भत्तियए, विसयावि जे ण रमंति ।
ते परमप्प पयास यहं, मुणिवर जोगा हवंति ॥ ३३६ ॥

वहही मुनि परमात्मा प्रकाश के योग्य हैं जिन को परमात्मपद की भक्ति है और जो विषयों में नहीं रमते हैं ॥

णाण वियक्खणु सुद्ध मणु, जो जणु एहउ कोइ ।
सो परमप्प पयासहं जोग्गु, भणंति जिं जोइ ॥ ३३७ ॥

जो विचक्षण ज्ञानी है और मन जिसका शुद्ध है ऐसा जोकोई पुरुषहै वहही परमात्माप्रकाश के योग्य कहागया है ।

लक्खण छंद विवज्जियउ, एहु परमप्प पयासु ।
कुणई सहावें भावियउ, चउगइ दुक्ख विणासु ॥ ३३८

यह परमात्मा प्रकाश जो छन्द अर्थात् कविताई के लक्षण रहित है अर्थात् कविताइ का विचार छोड़कर परमात्मपद का स्वरूप इस में वर्णन कियागया है उस को जो कोई शु[illegible] से ध्यावै है उसके चारोंगति के दुःख नाश होजाते हैं ॥

एत्थु ण लिक्खउ पंडियहिं, गुणु दोसुवि पुण रुत्तु ।
भट्ट पहीयर कारणइ, मइ पुणु पुणुवि पउत्तु ॥ ३३९ ॥

पण्डितों को चाहिये कि इस ग्रन्थमें बारबार एक बातको कहने के गुणदोष को न पकड़ैं क्यूं कि मैंने प्रभाकरभट्ट के समझाने के अर्थ एक एक बात को बारबार कहा है ॥

जं मइ किंपिवि जंपियउ, जुत्ताजुत्तु वि एत्थु ।
तं वरणाणि खमं तु महु, जे वुज्झहिं परमत्थु ॥ ३४० ॥

इस ग्रन्थ में यदि कोई बात मैंने युक्त अयुक्त कही है तो परमार्थ के जाननेवाले मुझपर क्षमाकरैं ॥

॥ काव्य ॥

जं तत्तं णाणरूवं परम मुणिगण णिच्च झायंति चित्ते ।
जं तत्तं देह चत्तं णिवसइ भुवणे सव्व देहीण देहो ॥
जं तत्तं दिव्व देहं तिहुवण गुरुवं सिज्झए संतजीवे ।
तं तत्तं जस्स सुद्धं फुरइ णियमणे पावए सोहु सिद्धं ॥ ३४१ ॥

जिस ज्ञान स्वरूप तत्व को परम मुनिगण नित्य अपने मनमें ध्यान करते हैं जो तत्व देहसे भिन्न है और जगत में सर्व देहधारियों की देह में बसताहै जिस तत्वकी देह दिव्यस्वरूपहै अर्थात् ज्ञानकी ज्योति से प्रकाशमान है और जो तत्व तीन लोकमें प्रतिष्ठतहै अर्थात् पूजनीकहै और संतजीवों को जिस तत्वकी सिद्धि होतीहै ऐसा शुद्ध तत्व जिसके हृदयमें प्रकट हुवाहै उसको निश्चयरूप सिद्धि प्राप्त होतीहै अर्थात् वह मुक्ति पदको पाताहै ॥

परमपयगयाणं भासवो दिव्व काओ ।
मणसि मुणिवराणं मोक्खदो दिव्वजोउ॥
विसय सुहरयाणं दुल्लहो जो हु लोए।
जयउ सिव सरूवो केवलो कोवि वोहो ॥ ३४२ ॥

वह शिवस्वरूप केवली भगवान् जयवंत रहैं जिनका दिव्य शरीर है और परमपदको प्राप्त हुवे हैं और जो मुनियों के नाथहैं और जिनका वह दिव्य अर्थात् शुक्ल ध्यानहै जो मुक्तिका देनेवालाहै और जो ध्यान विषय सुख में आसक्त जीवों को इस लोकमें प्राप्त होना दुर्लभहै॥